भारतीय ग्रन्थमाला, संख्या-१०

निर्वाचन पद्धति

दयाशंकर दुबे
भगवानदास केला

भारतीय ग्रन्थमाला, संख्या–१०

Nirvachan Paddhiti

निर्वाचन पद्धति

['निर्वाचन नियम' का पुनः परिवर्तित और संशोधित संस्करण]

लेखक

दयाशंकर दुबे Dya Shankar De

एम. ए., एल-एल. बी., अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

और

भगवानदास केला

रचयिता, भारतीय शासन, भारतीय अर्थशास्त्र, अपराध चिकित्सा, नागरिक शास्त्र आदि।

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दाबन

तीसरा संस्करण } १९४० 1940 { मूल्य नौ आने

प्रकाशक :—
भगवानदास केला
व्यवस्थापक,
भारतीय ग्रन्थमाला,
वृन्दावन ।

मुद्रक :—
नारायण प्रसाद,
नारायण प्रेस,
नारायण बिल्डिङ्गस
प्रयाग ।

निवेदन

इस समय ब्रिटिश भारत के लगभग साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है, और इस मताधिकार के बढ़ाये जाने की, अर्थात् बालिग मताधिकार दिये जाने की मांग है। देशी राज्यों में भी निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभाएँ संगठित की जाने के लिए आन्दोलन हो रहा है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का संगठन भी निर्वाचन पद्धति से होता है। परन्तु देश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में निर्वाचन सम्बन्धी पुस्तकें कितनी हैं !

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'निर्वाचन नियम' नाम से सन् १९२६ ई० में हुआ था। उस समय यह हिन्दी में अपने विषय की सर्व-प्रथम और एक-मात्र पुस्तक थी। विशेष खेद तो यह है कि चौदह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी इस विषय की कोई दूसरी हिन्दी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आयी। यथेष्ट साधन न होने पर भी हमने विगत वर्ष इस पुस्तक का दूसरा संस्करण छपाने का दुस्साहस किया। इस संस्करण में नित्य बदलने वाले निर्वाचन-नियमों को विस्तार से न देकर, सिद्धान्तों तथा प्रणाली का ही विशेष विचार किया गया। इसीलिए पुस्तक का नाम कुछ बदल कर 'निर्वाचन पद्धति' कर दिया गया, जिससे यह किसी निर्वाचन-आन्दोलन के समय की ही चीज़ न रह कर, अधिक उपयोगी और अपेक्षाकृत स्थायी महत्व की प्रमाणित हो।

हर्ष का विषय है कि इस संस्करण का अच्छा स्वागत हुआ। संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-प्रसार और ग्राम-सुधार विभागों ने बारह सौ से अधिक प्रतियां मोल लेकर इसे इस प्रान्त के पुस्तकालयों में रखा, तथा ग्वालियर राज्य ने इस पर ७५) का पारितोषिक प्रदान किया। इससे हमें इस पुस्तक का यह नया संस्करण, दूसरे संस्करण के केवल दो वर्ष बाद ही, प्रकाशित करने का सुअवसर मिला। इस बार हमने कुछ बातों को और भी सरल तथा स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

यह तो एक खुला रहस्य है कि निर्वाचन का विषय बहुत विशद है, इसके कुछ सम्यग् विवेचन के लिए प्रस्तुत पुस्तक के कई गुने आकार की रचना की आवश्यकता है। परन्तु हमें एक ओर अपनी स्थिति का, और दूसरी ओर हिन्दी पाठकों की आर्थिक अवस्था तथा मनोवृत्ति का भी तो ध्यान रखकर कार्य करना है। आशा है कि उत्तरदायी प्रतिनिधि-मूलक शासन पद्धति तथा राजनैतिक जागृति के प्रेमी इस के प्रचार में हमारा हाथ बटाना अपना आवश्यक कर्तव्य समझेंगे।

इस संस्करण के तैयार करने में हमें सुहृद्वर प्रोफेसर दयाशंकरजी दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० का सहयोग पूर्ववत् प्राप्त हुआ है। तदर्थ आपके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

विनीत

भगवानदास केला

पण्डित अयोध्याप्रसादजी शर्मा



जन्म—चैत्र शुक्ला ८, सं० १९२४ वि०

निवास स्थान—किरमच, कुरुक्षेत्र (पञ्जाब)

समर्पण

श्री० पण्डित अयोध्याप्रसाद जी शर्म्मा

पूज्य गुरुवर !

आपने मेरी शिक्षा-दीक्षा में कितना महत्व-पूर्ण योग दिया है ! मैंने स्कूल और कालिज में कुछ अध्ययन कर लिया है, और आज मैं राज-नीति या अर्थशास्त्र की दो बातें लिखने लग गया हूँ तो क्या यह बात भुलायी जा सकती है कि मुझे हिन्दी का वर्णमाला आदि सिखाने वाले तो आप ही हैं ? मैं ने अपनी जन्मभूमि गांव बायैल (करनाल, पंजाब) में पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा आपके ही श्री-चरणों में बैठकर पायी है ।

एक अक्षर–ज्ञान की ही बात नहीं; मुझे शिष्टाचार, सभ्यता और और सदाचार आदि गुणों का आधार-भूत ज्ञान आपने ही कराया है। मेरी बचपन की बार-बार की वीमारी में तो आपने धन्वन्तरी का ही कार्य किया है। गांव के अध्यापक को वैद्यक का ज्ञान होने से वह कितना अधिक उपयोगी हो सकता है, इसके आप उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

आपके उपकारों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। मेरे पिता जी का देहान्त हो चुका था; पीछे मेरे ज्येष्ठ भ्राता और बहिन का वियोग हो गया, तब आपने उससे स्वयं शोकातुर होते हुए भी मेरी शोक-संतप्त माता और भौजाई को धैर्य बंधाने का कार्य कितनी गंभीरता से किया !

महाभारत आदि की अनेक कथाएं और दृष्टान्त सुना-सुना कर वे दुख के दिन काटने में आपने हमारी कितनी सहायता की ! आप मेरी माता जी के लिए पुत्रवत्, और मेरे लिए बड़े भाई की तरह रहे।

मेरा गांव में रहना छूट गया, और आप भी वहां न रहे तो भी आपको हमारे दुख-सुख की बातें जानने और सदैव सत्परामर्श देने की चिन्ता रही। बावैल गांव मेरे लिए तीर्थ है, परन्तु यदि वहां जाने पर आपके निवास-स्थान किरमच (कुरुक्षेत्र) पहुँच कर आपके दर्शन न कर सकूं तो मैं अपनी तीर्थ-यात्रा अधूरी समझता हूँ।

आह ! चिरकाल तक हमने गांवों तथा ग्राम-शिक्षक को भुलाकर राष्ट्रोत्थान की बातें बनायीं। अब संसार-वन्द्य महात्मा गांधी ने हमारा वह मिथ्या स्वप्न दूर कर दिया है; और हमें ग्रामप्रस्थी और ग्राम-सेवक होने का आदेश किया है। हम इसे व्यवहार में लायें तभी हमारा वास्तविक हित-साधन होगा।

पूज्यवर ! मैं आपका कितना ऋणी हूँ, और यह भेंट कितनी क्षुद्र है ! जो हो, मैं आपकी कृपा-दृष्टि और आशीर्वाद का अभिलाषी हूं।

विनीत

भगवानदास केला

विषय-सूची

निर्वाचन पद्धति

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

'आधुनिक राज्यों की शक्ति का आधार उनकी निर्वाचन पद्धति में है।'

आधुनिक सभ्य और उन्नत शासन पद्धतियों में निर्वाचन का महत्व-पूर्ण स्थान है। प्रत्येक शासन पद्धति में एक मुख्य विचारणीय प्रश्न यह रहता है कि उसमें निर्वाचन प्रथा का उपयोग कहाँ तक, तथा किस प्रकार किया जाता है। राजनीति के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, सर्व साधारण नागरिकों को भी निर्वाचन सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

शासन पद्धतियों के स्थूल भेद—इन विषयों पर विचार करने के लिए यह जान लेना चाहिए कि शासन पद्धतियों के मुख्य भेद क्या हैं, और उनमें से किसमें निर्वाचन का अधिक उपयोग होता है। स्थूल रूप से शासन पद्धतियाँ चार प्रकार की होती हैं; संसार में प्रचलित अनेक प्रकार की शासन पद्धतियां इनके ही भेद उपभेद कही जा सकती हैं।

१—'आटोक्रेसी' अर्थात् स्वेच्छाचारी तन्त्र, इसमें एक व्यक्ति शासक होता है, वह मनमाने ढङ्ग से शासन करता है। उस पर किसी का अंकुश या नियंत्रण नहीं होता।

२—'ऐरिस्टाक्रेसी' अर्थात् कुलीन तंत्र, इसमें शासन सूत्र कुछ इने-गिने धनी-मानी या ख़ानदानी आदमियों के हाथ में रहता है।

३—'व्यूरोक्रेसी' अर्थात् कर्मचारी तन्त्र या नौकरशाही। इसमें प्रधान शासक प्रजा के देश से भिन्न देश (या जाति) का तो होता ही है, पर वह भी मुख्य कर्ता-धर्ता नहीं होता; उसकी ओर से कुछ नौकरों द्वारा राज्य-कार्य चलाया जाता है।

इन तीनों प्रकार की शासन पद्धतियों का क्रमशः लोप होता जा रहा है, अथवा यह कहना अधिक सत्य होगा कि इनका विशुद्ध प्रचीन स्वरूप अब बहुत बदल गया है, और बदलता जा रहा है।

४—'डेमोक्रेसी' अर्थात् लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र। इसमें जनता स्वयं अपना शासन करती है। आज कल इस प्रणाली का प्रचार बढ़ता जा रहा हैं। इसमें (प्रतिनिधियों द्वारा) जनता कर वसूल करने, सरकारी आय को सार्वजनिक कार्यों में खर्च करने, क़ानून बनाने तथा शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी नियम-निर्माण करने का कार्य करती है। वह कहीं-कहीं प्रधान शासकों को भी स्वयं चुनती, या नियुक्त करती है। इसी का नाम लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र या जनता का राज्य है।

अब विचारणीय विषय यह है कि उपर्युक्त कार्यों में, विशेषतया क़ानून बनाने में नागरिकों का अधिकार होने की क्या आवश्यकता है, तथा वे इस अधिकार का उपयोग किस प्रकार और कहाँ तक कर सकते हैं। इन्हीं प्रश्नों पर विचार करने से निर्वाचन का महत्व स्पष्ट हो जायगा।

नागरिक और नियम-निर्म्माण—प्रत्येक राज्य में कुछ नियम या क़ानून होते हैं। इनका उद्देश्य यह होता है कि नागरिकों की उन्नति और सुख-शान्ति की वृद्धि होती रहे। इनसे पारस्परिक व्यवहार की सुविधा होती है। परन्तु क़ानूनों का उपयोग तभी है, जब सब नागरिक उन्हें मान्य करें तथा भली भांति उनका पालन करें। नागरिक, राज्य के क़ानूनों का पालन इस लिए करते हैं कि (१) क़ानून पालन न करने की दशा में उन्हें राज्य की ओर से दण्ड मिलता है, (२) क़ानून नागरिकों के हितार्थ बनाये जाते हैं, और (३) क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ होता है। इनमें से प्रथम कारण का प्रभाव विशेष स्थायी नहीं होता, केवल भय से कोई क़ानून बहुत समय तक, बहुत से नागरिकों द्वारा पालन नहीं किया जाता। दण्ड का भय क़ानून-पालन में सहायक अवश्य होता है, परन्तु यदि नागरिकों को यह विदित हो कि क़ानून उनके लिए हितकर नहीं है, तो वे दण्ड की जोखम उठा कर भी क़ानून भङ्ग करने का साहस करने लगते हैं। अच्छा, क्या नागरिक केवल इस लिए क़ानूनों को मान्य करते हैं कि वे

उनके लिए हितकर हैं ? नहीं, सदैव ऐसा नहीं होता । अनेक दशाओं में बहुत से नागरिकों को क़ानूनों की उपयोगिता स्पष्ट ज्ञात नहीं होती, अथवा हर समय स्मरण नहीं रहती । प्रायः नागरिकों को क़ानून का पालन करने की प्रेरणा विशेषतया इस लिए होती है कि क़ानूनों के बनाने में उनका भी हाथ होता है। अपनी बनायी हुई चीज़ का आदर-मान करना, उसकी अवहेलना न करना, मनुष्य का स्वभाव है। इस लिए अपने बनाये क़ानून कुछ कठोर होते हुए भी पालन किये जाते हैं; इसके विपरीत दूसरों के बनाये क़ानून आशंका की दृष्टि से देखे जाते हैं। किसी राज्य में क़ानून बनाने में नागरिकों का हाथ जितना अधिक होता है, उतनी ही वहां नागरिकों द्वारा क़ानून-पालन की आशा अधिक होती है। अतएव प्रत्येक सभ्य और शिक्षित राज्य में यह आवश्यक समझा जाता है कि वहां के क़ानून अधिक से अधिक नागरिकों द्वारा बनाये जायँ ।

प्रतिनिधि-प्रणाली का आविष्कार—राज्य के सब नागरिकों का, क़ानून बनाने में भाग लेना न तो सम्भव ही है, और न उपयोगी ही। आज कल तो राज्य बड़े बड़े होने लग गये हैं; उनका विस्तार सैकड़ों ही नहीं, हज़ारों वर्ग मील तक होता है, और उनकी जन-संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों तक होती है। ऐसी दशा में समस्त नागरिकों का, क़ानून बनाने के लिए किसी एक स्थान पर एकत्र होना और शान्ति-पूर्वक विचार करके क़ानून बनाना

कितना कठिन है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। परन्तु यदि राज्य छोटा ही हो, उसका विस्तार और जन-संख्या बहुत सीमित हो, तो भी समस्त नागरिकों का, क़ानून बनाने के लिए एकत्रित होना सम्भव नहीं है। प्रत्येक स्थान के निवासियों में बच्चों और नाबालिग़ों की खासी संख्या होती है; फिर, कुछ आदमी वृद्ध, रोगी या निर्बल होते हैं। यदि इन्हें छोड़ दिया जाय तो भी शेष सब आदमी नियम बनाने में प्रत्यक्ष भाग नहीं ले सकते। उदाहरण के लिए एक साधारण नगर का विचार करो, जिसकी आबादी बीस हज़ार है, इसमें से बालक, रोगी आदि दस हज़ार निकाल दिये जायँ तो भी दस हज़ार शेष रहते हैं। इतने पुरुष स्त्री अपने घर-गृहस्थ का सब काम-काज छोड़ कर एक स्थान पर एकत्र हों और विचार-विनिमय करने तथा क़ानून बनाने का कार्य करें, यह कहां तक व्यवहारिक है!

प्राचीन समय में यूनान आदि देशों के छोटे-छोटे राज्यों में सैकड़ों वर्ष तक शासन सम्बन्धी विषयों पर निर्धारित आयु के समस्त नागरिक* एकत्रित होकर अपना मत प्रकट करते थे, और उनकी सर्व-सम्मति या बहु-सम्मति से ही क़ानून बनते थे। इस प्रकार जनता को प्रत्यक्ष रूप से अपने यहां के व्यवस्था-कार्य में भाग लेने का अधिकार था। जब तक राज्य बहुत छोटे रहे, व्यवस्था-कार्य जैसे-तैसे

*यूनान आदि देशों में बहुत से गुलाम (दास) होते थे, उन्हें तथा स्त्रियों को नागरिक नहीं माना जाता था।

चलता रहा। परन्तु क्रमशः उनके बड़े और विस्तृत हो जाने पर, एवं उनकी जन-संख्या बहुत बढ़ जाने पर, शान्ति तथा सुगमता से कार्य सम्पादन होना असम्भव हो गया।

तब प्रतिनिधि-प्रणाली का आविष्कार हुआ। यह सोचा गया कि राज्य के प्रत्येक भाग (ग्राम या नगर) के समस्त नागरिक व्यवस्था-कार्य में योग देने के बजाय, अपना यह अधिकार कुछ चुने हुए सज्जनों को दे दें, जो उनकी ओर से आवश्यक क़ानून की रचना और शासन-कार्य किया करें। ऐसे चुने हुए सज्जन 'प्रतिनिधि' कहलाने लगे। इस प्रकार यदि राज्य की जन-संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों भी हो तो उनकी ओर से केवल दो तीन सौ या अधिक आदमी उक्त कार्य कर सकते हैं। सुविधा और आवश्यकता होने पर यह संख्या बढ़ायी जा सकती है। यह ध्यान रखा जाता है कि प्रतिनिधियों की संख्या इतनी अधिक न हो कि उनके एक स्थान में बैठने और विचार-विनिमय करने में कठिनाई हो।

प्रतिनिधि-प्रणाली से सुविधा—प्रतिनिधि प्रणाली से क़ानून बनाने के कार्य में लोक सत्तात्मक भावों की रक्षा करना कितना सुविधा-जनक है, यह स्पष्ट है। इससे, बड़े-बड़े विस्तृत राज्यों में दूर-दूर से हज़ारों लाखों आदमियों को एक स्थान पर एकत्रित होने की आवश्यकता नहीं होती, उनकी ओर से थोड़े से आदमी शान्ति-पूर्वक विचार-विनिमय करने और क़ानून बनाने का कार्य करते हैं। साथ ही सर्व साधारण को यह संतोष रहता है कि जो आदमी क़ानून बनाते

हैं, वे हमारे चुने हुए हैं, हमने उनको भेजा है, वे हमारे लाभ-हानि का विचार करके ही क़ानून बनाएँगे, मनमाने क़ानून नहीं बनाएँगे; एक प्रकार से हम अपने ही बनाये हुए क़ानूनों से शासित होंगे, हम अपने ही अधीन होंगे, अर्थात् हम स्वराज्य का उपभोग करेंगे।

प्रतिनिधि-प्रणाली में जनता अर्थात् सर्व साधारण स्वयं क़ानून नहीं बनाते, वरन् उनके प्रतिनिधि यह कार्य करते हैं। इस प्रकार इस प्रणाली का अवलम्बन करने वाले राज्य में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र नहीं होता (उसका होना व्यवहारिक या सुविधा-जनक नहीं होता); हां, इसे परोक्ष प्रजातंत्र कह सकते हैं। विशेष सुविधा-जनक होने के कारण इस प्रणाली का प्रचार क्रमशः संसार के बहुत से सभ्य देशों में हो गया*। प्रत्येक देश में व्यवस्थापक (क़ानून बनाने वाली) सभाओं के लिए, जनता की सर्व-सम्मति या बहुमत के अनुसार, प्रतिनिधि चुने जाने लगे। एक निर्धारित अवधि के पश्चात् इन प्रतिनिधियों का नया निर्वाचन करने की रीति पड़ गयी।

प्रत्यक्ष और परोक्ष निर्वाचन—इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व एक बात का और विचार कर लेना आवश्यक है। प्रतिनिधि-निर्वाचन दो प्रकार से हो सकता है, प्रत्यक्ष रीति से, और परोक्ष रीति से। कल्पना करो एक प्रान्त है, जिसकी कुल आबादी

*जिन संस्थाओं का उद्देश्य राजनैतिक न होकर सामाजिक, धार्मिक या आर्थिक आदि होता है, उनके सङ्गठन या नियम-निर्माण के लिए भी प्रतिनिधि-प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

चार करोड़ है, इनमें से नाबालिगों आदि को छोड़ कर दो करोड़ आदमी ऐसे हैं जिन्हें मताधिकार प्राप्त है। ये दो करोड़ आदमी अपने अपने नगर की म्युनिसिपैलटी या ज़िले के ज़िला-बोर्ड आदि के लिए प्रतिनिधि चुनते हैं। मानलो, प्रान्त की स्थानीय संस्थाओं के कुल प्रतिनिधियों की संख्या डेढ़ हज़ार है। अब इस प्रान्त की व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों का निर्वाचन करना है। यदि उसके कुल दो करोड़ मतदाता इन सदस्यों का निर्वाचन करें तो इसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जायगा, और यदि व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों के चुनाव का अधिकार इन लोगों को न होकर केवल इनके चुने हुए उपर्युक्त म्युनिसिपल बोर्ड, और ज़िला-बोर्ड आदि के पूर्वोक्त डेढ़ हज़ार सदस्यों को ही हो, तो इसे परोक्ष निर्वाचन कहा जायगा। सन् १९०९ ई० के शासन-सुधारों से भारतवर्ष में परोक्ष निर्वाचन पद्धति ही प्रचलित की गयी थी। उसके अनुसार, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के जो सदस्य निर्वाचित होते थे; उनमें से अधिकांश का निर्वाचन म्युनिसिपल बोर्ड और ज़िला-बोर्डों के सदस्य करते थे। इसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक सभा के चुने जाने वाले सदस्यों में से अधिकांश, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होते थे।

परोक्ष निर्वाचन की दूसरी विधि यह है कि साधारण मतदाता पहले कुछ निर्वाचकों का चुनाव करते हैं। फिर ये निर्वाचक, प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। इस प्रकार, कल्पना करो कि किसी प्रान्त की चार करोड़ आबादी में दो करोड़ मतदाता हैं, और इस प्रान्त में

चालीस ज़िले हैं, तथा हरएक ज़िले में औसतन पांच-पांच लाख मतदाता हैं, तो अगर एक ज़िले को दस-दस निर्वाचक-संघों में विभक्त किया गया तो उपर्युक्त पद्धति के अनुसार पहले प्रत्येक निर्वाचक संघ के मतदाता अपनी ओर से कुछ निर्वाचकों का चुनाव करेंगे। कल्पना करो कि प्रत्येक निर्वाचक संघ के पचास-पचास हज़ार मतदाताओं ने पचास-पचास निर्वाचकों का चुनाव किया तो अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का चुनाव करने में प्रान्त के समस्त दो करोड़ मतदाता भाग न लेंगे, वरन् प्रत्येक निर्वाचक-संघ के केवल पचास-पचास निर्वाचक, अर्थात् प्रान्त भर के कुल मिलाकर ४०×१०×५० अर्थात् केवल बीस हज़ार निर्वाचक ही चुनाव करेंगे।

परोक्ष निर्वाचन के पक्ष में यह कहा जाता है कि यह सरल, सुगम, तथा कम खर्चीला है। एक बार स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों का निर्वाचन हो चुकने के बाद प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक परिषद के चुनाव के लिये फिर वैसा ही झंझट उठाना नहीं पड़ता; करोड़ों आदमियों को बार-बार मत देने का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं होती। मध्यस्थ संस्था (म्युनिसिपल बोर्ड आदि) के सदस्य साधारण जनता की अपेक्षा अधिक योग्य होते हैं, और वे अपने प्रतिनिधि विशेष रूप से सोच समझ कर भेज सकते हैं।

परन्तु इसका दूसरा पहलू भी है, अर्थात् इसके विपक्ष में भी कई बातें विचारणीय हैं। संस्थाओं के सदस्यों का चुनाव

करने से सर्व-साधारण मतदाताओं में स्थानीय राजनीति में अनुराग उत्पन्न होता है, उनमें तदनुसार जागृति भी होती है। पर इससे उन्हें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों के बारे में विचार करने का तथा व्यापक राजनैतिक शिक्षा पाने का यथेष्ट अवसर नहीं मिलता। वे देश या प्रांत के प्रश्नों और समस्याओं से अपरिचित रहते हैं। उन्हें अपने उत्तरदायित्व का भी ऐसा अनुभव नहीं होता, जैसा प्रान्तीय या केन्द्रीय सभा के लिए प्रतिनिधि चुनने की दशा में होता। पुनः इस प्रथा में साधारण मतदाताओं और प्रतिनिधि में कुछ सीधा सम्बन्ध नहीं रहता, फलतः वे उसके चुनाव की ओर उदासीन से रहते हैं। इस प्रकार प्रान्त या देश की राजनीति निर्धारित करने में उनका यथेष्ट भाग नहीं होता। इससे प्रजातन्त्र शासन पद्धति का उद्देश्य ही बहुत-कुछ विफल हो जाता है। अतएव प्रायः प्रतिनिधियों का सीधा, प्रजा द्वारा निर्वाचित होना ही उत्तम माना जाता है, अर्थात् परोक्ष निर्वाचन की अपेक्षा प्रत्यक्ष निर्वाचन बहुत अच्छा समझा जाता है।

दूसरा अध्याय

निर्वाचक संघ

मैं इस देश (भारतवर्ष) को ऐसे भारतवर्ष के रूप में नहीं देखता जिस में भिन्न-भिन्न जातियों के प्रतिनिधि हों, जहां हिन्दू जाति अपने ही स्वार्थों की पूर्ति का प्रयत्न करे, या मुसलमान जाति अपने विशेष हित प्राप्त करने की कोशिश करे, या योरपियन लोग अपनी ही जाति के सामयिक लाभों का चिन्तवन करें; वरन् मैं इसे ऐसे भारतवर्ष के रूप में देखता हूँ जो सब जातियों और सभी श्रेणियों का हो, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, योरपियन और दूसरी प्रत्येक श्रेणी, जाति और धर्म के लोग मिल कर काम करेंगे और भारतवर्ष को महान भारतवर्ष बनाने और उसे संसार के भावी इतिहास में अधिक उच्च स्थान देने का प्रयत्न करेंगे।

—लार्ड रीडिंग

प्राक्कथन—प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न दृष्टियों से निर्वाचित किये जा सकते हैं, यथा, क्षेत्र की दृष्टि से, पेशे या धंधे को दृष्टि से, तथा जाति या धर्म की दृष्टि से। उदाहरण के लिए एक प्रान्त की व्यवस्थापक सभा के वास्ते प्रतिनिधि चुनने हैं, इसमें यह विचार हो सकता है कि (१) इस प्रान्त के इस-इस ज़िले से इतने-इतने प्रतिनिधि लिये जायँ। यदि जिला बहुत बड़ा हो, और उससे एक से अधिक प्रतिनिधि लेना हो तो उस ज़िले के दो या अधिक ऐसे भाग किये

जा सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि लिया जाय; इसी प्रकार यदि ज़िला इतना छोटा है कि कुल प्रान्त का विचार करते हुये उस ज़िले से एक प्रतिनिधि लेना उचित नहीं है तो उस ज़िले को किसी अन्य ज़िले या उसके किसी भाग से मिलाकर इस सम्मिलित क्षेत्र से एक प्रतिनिधि लिया जा सकता है। या (२) प्रान्त भर के, कृषि-कार्य करने वालों के इतने प्रतिनिधि हों, उद्योग धंधों में लगे हुये आदमियों के इतने प्रतिनिधि हों, शिक्षकों की ओर से इतने प्रतिनिधि हों, इत्यादि। या (३) प्रान्त भर की आबादी के हिसाब से इतने हिन्दू हों इतने मुसलमान और इतने ईसाई आदि।

प्राय: देशों में ऐसी प्रणाली अवलम्बन की जाती है, जिसमें प्रथम दो प्रकार की दृष्टियों का मिश्रण हो अर्थात् यह विचार किया जाता है, इतने क्षेत्र के अमुक अमुक कार्य करने वालों के इतने प्रतिनिधि हों।

निर्वाचक-संघ का क्षेत्र—निर्वाचन के सुभीते के लिए प्रत्येक प्रान्त, ज़िला या नगर सरकार द्वारा कई भागों या क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचक समूह को निर्वाचक-संघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचक संघ अपनी ओर से प्राय: एक-एक (कहीं-कहीं एक से अधिक) प्रतिनिधि चुनता है।

निर्वाचक-संघ का क्षेत्र कितना होना चाहिए? भिन्न-भिन्न संस्थाओं के निर्वाचक संघों के क्षेत्र का परिमाण भिन्न-भिन्न होता है। म्युनिसिपल बोर्ड के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्र नगर का एक

'वार्ड' (हल्का, एक मोहल्ला या कुछ मोहल्लों का समूह) होता है। ज़िला-बोर्ड के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्र कई-कई गांवों का होता है। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव के लिये निर्वाचन क्षेत्र एक ज़िला तक हो सकता है। इसमें ध्यान इस बात का रखा जाना चाहिए कि निर्वाचकों और उनके प्रतिनिधि में जितना अधिक सम्पर्क रह सके, अच्छा है। इसलिए प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के चुनाव के वास्ते निर्वाचक-संघ बड़ा न होना चाहिए।

साधारण निर्वाचक—भारतवर्ष में दो प्रकार के निर्वाचक-संघ हैं, साधारण और विशेष। व्यवस्थापक संस्थाओं, तथा कुछ स्थानों में म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों के लिए साधारण निर्वाचक-संघ जाति-गत निर्वाचक-संघों में विभाजित किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का निर्वाचक-संघ, ग़ैर-मुसलमानों* का निर्वाचक-संघ, योरपियनों का निर्वाचक-संघ, सिक्खों का निर्वाचक-संघ, इत्यादि।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों तथा भारतीय व्यवस्थापक सभा के लिए जाति-गत निर्वाच-संघ प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का नगर-निर्वाचक-संघ,

*ग़ैर-मुसलमान शब्द कृत्रिम है। यद्यपि हम जाति-गत प्रतिनिधित्व के पक्ष में नहीं है (इस विषय में आगे लिखा गया है), तथापि वैसा प्रतिनिधित्व होने की दशा में हिन्दू शब्द का प्रयोग न होना और हिन्दुओं को ग़ैर-मुसलमान कहा जाना अनुचित समझते हैं।

मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ, ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ इत्यादि।

जिस क्षेत्र का निर्वाचक-संघ होता है, उस क्षेत्र का नाम भी निर्वाचक-संघ के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे लखनऊ ज़िले का ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ।

जिस व्यवस्थापक संस्था का निर्वाचक-संघ होता है, उस संस्था का भी नाम निर्वाचक-संघ के साथ जोड़ देने से निर्वाचक संघ का पूरा परिचय हो जाता है, जैसे संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद का, लखनऊ ज़िले का, ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ।

निर्वाचक-संघों का ग्राम-निर्वाचक-संघों और नगर-निर्वाचक-संघों में विभाजित किया जाना कृत्रिम है। बहुधा दूर-दूर के नगरों के निर्वाचकों के पारस्परिक हितों में इतनी समानता नहीं होती, जितनी पास पास के नगर और एक ग्राम के निर्वाचकों में होती है। हां, दूर-दूर के नगरों में इतनी समानता अवश्य होती है, कि वे ग्रामवासियों की अपेक्षा प्रायः अधिक शिक्षित होते हैं, तथा उनका जीवन अपेक्षाकृत अधिक औद्योगिक या व्यापारिक होता है। औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि-कोण से विशेष निर्वाचक-संघों की योजना की जाती है, जिसके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा। इस प्रकार सिद्धान्त से नगर-निर्वाचक-संघों को ग्राम-निर्वाचक-संघों से पृथक् करने की आवश्यकता नहीं है। यह केवल सुविधा की दृष्टि से किया जाता है।

विशेष निर्वाचक-संघ—भारतवर्ष में ज़मींदारों और मज़दूरों जैसे कुछ विशेष जन-समुदायों को, या विश्वविद्यालय तथा व्यापार सभा (चेम्बर-आफ़-कामर्स) आदि संस्थाओं को अपने प्रतिनिधि भेजने का विशेष अधिकार दिया गया है। ऐसे जन-समुदायों या संस्थाओं के निर्वाचक-संघ, विशेष निर्वाचक संघ कहलाते हैं। ये जिस जन-समुदाय या संस्था के होते हैं, उसी के नाम से इनका नाम पड़ जाता है, जैसे संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद के लिए प्रयाग विश्व-विद्यालय का निर्वाचक-संघ।

अब हम यह विचार करेंगे कि किसी जन-समुदाय या संस्था का जाति-गत वा पृथक् निर्वाचक-संघ होना कहाँ तक उचित है। किन्तु इसके पहले यह विचार कर लेना आवश्यक है कि विशेष प्रतिनिधित्व ही कहाँ तक ठीक है।

विशेष प्रतिनिधित्व—ऊपर विशेष निर्वाचक-संघों की बात कही गयी है। इन निर्वाचक-संघों के निर्वाचक साधारण निर्वाचक-संघों में तो मत दे ही सकते हैं। उसके अतिरिक्त इन्हें अपने विशेष निर्वाचक-संघों में मत देने का विशेष अधिकार भी होता है। इस बात को यों कहा जाता है कि इन्हें विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। विशेष प्रतिनिधित्व के विषय में राज-नीतिज्ञों में मत-भेद है। एक पक्ष का मत है कि किसी भी प्रकार का विशेष प्रतिनिधित्व अनावश्यक, अन्याय-युक्त, और देश के लिए हानिकर है। दूसरा पक्ष सिद्धान्त से तो पहले पक्ष का

ही समर्थन करता है, परन्तु उसका कथन है कि जब तक समाज की स्थिति ऐसी है कि बहुत से आदमी सब के हित का विचार न करके अपनी दृष्टि छोटे-छोटे क्षेत्र तक ही परिमित रखते हैं, व्यवहार में विशेष प्रतिनिधित्व से काम लेना पड़ेगा। इस पक्ष का तर्क यह है कि देश में कुछ श्रेणियों के, या कुछ स्वार्थों वाले व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन पर सरकारी क़ानूनों और करों (टैक्सों) आदि का काफ़ी असर पड़ता है, परन्तु साधारण जनता में इन व्यक्तियों की संख्या या प्रभाव कम होने से, ये चुनाव में नहीं आते; और, यदि आते भी हैं तो बहुत कम। इससे ये अपने लिए बनने वाले क़ानूनों, या अपने ऊपर लगने वाले करों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट नहीं कर सकते, और बहुत हानि उठाते हैं। इसलिए इन व्यक्तियों को अपने कुछ विशेष प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चाहिए।

इस विषय में हमारी सम्मति यह है कि समाज की उस परिस्थिति को ही बदल देने का प्रयत्न होना चाहिए जिसके आधार पर विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता बतायी जाती है। राजनैतिक विषयों में सब नागरिकों की एक ही श्रेणी हो, और सबका समान ही स्वार्थ हो। इस प्रकार समाज का प्रत्येक व्यक्ति सबके लिए हो। कोई सदस्य किसी विषय में अपना मत दे, तो सभी के हित को दृष्टि में रखे। किसी विशेष श्रेणी के, या विशेष स्वार्थ वाले व्यक्तियों को पृथक् प्रतिनिधित्व देना, समाज को छिन्न-

भिन्न कर देना है। यह फूट की बेल एक बार लग जाने पर सदैव बढ़ती ही रहती है और अन्त में समाज भर को ग्रस्त करके छोड़ती है। इसलिए समाज के किसी अंग को विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार देना, सर्वथा अनुचित है।

जाति-गत निर्वाचक संघ—विशेष प्रतिनिधित्व को लक्ष्य में रखकर ही भारतवर्ष में मुसलमानों ने जाति-गत प्रतिनिधित्व का दावा उपस्थित किया। दुर्भाग्य से, हिन्दू नेताओं की अत्यधिक उदारता से, तथा सरकारी अधिकारियों के पक्षपात से उनका यह दावा स्वीकृत हो गया। विशेष आपत्तिजनक बात यह हुई कि यहां साधारण निर्वाचक-संघ जाति-गत निर्वाचक-संघों में विभक्त किये गये, और यह व्यवस्था की गयी कि किसी जाति-गत निर्वाचक-संघ के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए वे ही व्यक्ति निर्वाचक हो सकें जो उसी जाति के हों, जिस जाति का वह निर्वाचक-संघ है। इससे यहां राष्ट्रीयता का भयंकर ह्रास हो रहा है। नागरिक अपनी-अपनी जाति या धर्म आदि के पीछे पड़कर देश-प्रेम के भावों की नितान्त अवहेलना कर रहे हैं। रोग बराबर बढ़ता ही जा रहा है।

हम पहले कह आये हैं, कि जाति-गत निर्वाचक-संघों की व्यवस्था विशेषतया मुसलमानों की मांग के आधार पर हुई है। यदि उनके जाति-गत निर्वाचक-संघ न रहें तो सिक्खों की, अपने जाति-गति निर्वाचक-संघ रखने की भी कोई मांग नहीं रहती। और, जब भारतवर्ष में रहने वाली जातियां इस प्रकार अपनी पृथकता की घोषणा करती

हैं तो सरकार के लिए योरपियनों के पृथक् निर्वाचक संघ रखने की बात बनी-बनायी है। अस्तु, हम तो मूल बात का ही विरोध करते हैं। वास्तव में एक बार जाति-गत निर्वाचक-संघों का श्रीगणेश कर देने पर फिर उसका कहीं अन्त ही नहीं दिखायी देता। नित्य नयी जाति उप-जातियां इस विषय की अपनी पृथक् पृथक् मांग उपस्थित करती रहती हैं। सरकार का उन्हें संतुष्ट करना अधिकाधिक कठिन होता जाता है। जितना वह एक जाति को संतुष्ट करने का प्रयत्न करती है, उतना ही अन्य जातियों के प्रति अनौचित्य होता है। इससे सरकार की निष्पक्षता जाती रहती है, और फल-स्वरूप उसकी नैतिक शक्ति घटती जाती है।

निर्वाचन जैसे नागरिक कार्य में जाति-गत विचार होने से जनता में राजनैतिक असन्तोष तो बढ़ता ही है। इसके अतिरिक्त, भिन्न-भिन्न जातियों में वैमनस्य, फूट और कलह भी बढ़ती जाती है। क्या प्रत्येक जाति के बुद्धिमान आदमी मिलकर जाति-गत निर्वाचन के विरुद्ध लोकमत तैयार करेंगे, और क्या सरकार राष्ट्र-हित की दृष्टि से विचार करेगी? इस सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

निर्वाचक संघ एक-एक प्रतिनिधि वाला होना चाहिए या कई-कई प्रतिनिधियों वाला?—निर्वाचक-संघों के बारे में एक विचारणीय प्रश्न यह रहता है कि उनके क्षेत्र की सीमा इस प्रकार से निर्धारित की जाय कि एक निर्वाचक-संघ से एक ही प्रतिनिधि लिया जाय, अथवा उसका क्षेत्र ऐसा हो कि उससे एक

से अधिक प्रतिनिधि लिये जायँ। साधारणतया सिद्धान्त से यही अच्छा है कि निर्वाचक संघों की सीमा इस प्रकार निर्धारित की जाय कि एक निर्वाचक-संघ से एक ही प्रतिनिधि लिया जाय। इससे निर्वाचन में सुविधा तथा सरलता रहती है।

परन्तु भारतवर्ष में जाति-गत निर्वाचन की व्यवस्था है, और कई जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या क़ानून से निर्धारित है। इस समय उनके प्रथक् निर्वाचन की व्यवस्था है। लोकमत बहुत-कुछ इसके विरुद्ध है, और यहाँ संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था की जाने के लिए प्रयत्न हो रहा है। परन्तु अभी विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित बनी रखने के विरुद्ध यथेष्ट लोकमत तैयार नहीं हुआ है। यदि संयुक्त निर्वाचन होने लगे और प्रतिनिधियों की संख्या जातिवार निर्धारित रहे तो निर्वाचक-संघ एक-एक प्रतिनिधि वाले नहीं बनाये जा सकते; कारण कि उस दशा में एक निर्वाचक संघ से एक ही जाति का (एक) प्रतिनिधि चुना जा सकेगा। इससे दूसरी जाति के निर्वाचकों को असन्तोष होगा। साथ ही इस प्रकार समस्त निर्वाचक-संघों से विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों के निर्धारित संख्या में चुने जाने की भी कोई गारण्टी नहीं रहती। निदान, संयुक्त निर्वाचक होने की दशा में, जब तक कि विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या क़ानून से निर्धारित है, निर्वाचक संघ ऐसे ही रखने होंगे, जिनसे कई-कई प्रतिनिधि चुने जायँ।

तीसरा अध्याय

साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन

जब तक भारत के सभी समाज, सभी सम्प्रदाय और जातियां आपस में मिलकर एक राष्ट्र क़ायम नहीं करेंगे, तब तक स्वराज्य की आशा स्वप्नवत् रहेगी। परन्तु पृथक् निर्वाचन तो राष्ट्रीय भावना जागृत करने में सबसे बड़ा बाधक है।

—प्रो० अब्दुल मजीद खां

पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में पृथक् और साम्प्रदायिक निर्वाचन की पद्धति प्रचलित है। इसका, सिद्धान्त से, बिल्कुल समर्थन नहीं हो सकता। देश-हितैषी और विचारशील भारतवासी इसकी सदैव निन्दा करते रहे हैं। फिर, यह पद्धति कैसे प्रचलित हुई?

प्रारम्भिक इतिहास—सन् १९०५ ई० के बंग-भंग आन्दोलन का, भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है। उससे भारतीय जनता में जो व्यापक असंतोष हुआ, वह सर्व-विदित है। अन्य असंतोष-जनक बातों का भी अभाव न था। फलतः तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो को यहां की शासन-पद्धति में थोड़ा-बहुत सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई, उन्होंने नरम दल के भारतीयों को संतुष्ट करने के हेतु भारत-मंत्री लार्ड मार्ले से विचार किया। लार्ड मिन्टो के विषय में अब यह कोई रहस्य

नहीं है कि वे कुछ महत्वाकांक्षी और साम्प्रदायिक मुसलमान नेताओं की सहानुभूति प्राप्त करने के बहुत इच्छुक थे। उनसे सन् १९०६ ई० में, हिज़-हाईनेस सर आग़ा खां के नेतृत्व में, मुसलमानों का एक प्रतिनिधि-मंडल (डेप्यूटेशन) मिला, जिसके सम्बन्ध में पीछे कोकोनाडा कांग्रेस के सभापति की हैसियत से भाषण करते हुए स्व० मौलाना मोहम्मद अली ने कहा था कि यह तो सरकारी अधिकारियों के आज्ञानुसार ही पहुंचा था।* अस्तु, सन् १९०९ ई० के मार्ले-मिन्टो सुधारों में मुसलमानों के लिए भारतीय व्यवस्थापक सभा में, और पंजाब † को छोड़कर अन्य प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों में, पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी की गयी। यहां यह बात विशेषतया उल्लेखनीय है कि उस समय तक साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी करने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई समझौता नहीं हुआ

* "मैं स्वयं इस बात का गवाह हूँ कि आंदोलन के फल-स्वरूप १९०६ ई० में जब कुछ शासन-सुधार दिया जाने वाला था तब शिमले से तार भेजकर नवाब मोहसिनुलमुल्क को बम्बई से बुलाया गया। शिमले में उनकी जो बात-चीत हुई, उसका नतीजा यह निकला कि आगाखां यद्यपि योरप जा रहे थे, उन्हें तार भेजकर अदन से वापिस बुला लिया गया। हैदराबाद (दक्षिण) के सैयद बिलग्रामी ने मुसलमानों की ओर से मेमोरियल तैयार किया, जिसमें मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग पेश की थी। यह सब काण्ड शिमले के इशारे पर किया गया था।"

मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद

† पंजाब में मुसमानों की आबादी हिन्दुओं से अधिक है।

था। स्वयं लार्ड मार्ले भी साम्प्रदायिक निर्वाचन की बुराइयों को जानते हुए इसे भारत में जारी करने के पक्ष में न थे, पर पीछे उन्होंने लार्ड मिन्टो का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक गवर्नर-जनरल के इशारे पर इस प्रथा की मांग की गयी, और, तत्कालीन भारत-मंत्री ने अनुचित मानते हुए भी इसका समर्थन कर दिया, और, यह अनिष्टकारी प्रथा भारत में प्रचलित कर दी। अधिकारियों ने साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा चलाकर साधारण मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित किया है, परन्तु वास्तव में उनकी इस चाल में एक दूसरा उद्देश्य भी था, जो उनकी दृष्टि से, कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण था; वह उद्देश्य था, शासन सुधारों की उपयोगिता को गुप्त रूप से कम कर देना, देश की राष्ट्रीयता को धक्का पहुँचाना, और इस प्रकार यहां विदेशी शासन को चिरायु बनाने का कूट प्रयत्न करना।*

सन् १९१६ ई० में शासन सुधारों की योजना बनाते हुए भारतीय नेताओं ने यह विचार किया कि उसमें देश की सम्मिलित मांग का समावेश हो, वह केवल हिन्दुओं या मुसलमानों की मांग की सूचक न हो। इसलिए लखनऊ में एक योजना तैयार की गयी, यह पीछे कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के द्वारा स्वीकृत

*श्री सत्यमूर्ति ने अपने एक भाषण में कहा है "साम्प्रदायिक निर्णय मुसलमानों के लिए रियायत नहीं है, बल्कि साम्राज्यवाद की रक्षा का एक उपाय है। इसका अन्त होना ही चाहिए।"

होने से कांग्रेस-लीग योजना अथवा लखनऊ का समझौता कहलायी। क्योंकि मुसलमान साम्प्रदायिक निर्वाचन को इस समय अपना एक विशेषाधिकार मानने लग गये थे, और योजना को संयुक्त मांग की सूचक बनाने के लिए उनसे समझौता करना आवश्यक था, इसलिए साम्प्रदायिक निर्वाचन की बुराइयों को भली भांति जानते हुए भी केवल समझौते की सफलता के हेतु राष्ट्रीय विचार वाले नेताओं ने भी उक्त योजना में उसे स्थान दे दिया। इस बात से अधिकारियों ने अनुचित लाभ उठाया। सन् १९१९ ई० के शासन सुधारों में, उक्त योजना की अन्य बातों की अवहेलना करके, ब्रिटिश सरकार ने उसके एक दूषित अङ्ग, साम्प्रदायिक निर्वाचन, को स्थान दे दिया; यद्यपि भारत-मंत्री मि० मांटेग्यू ने यह स्वीकार किया था कि यह प्रथा प्रजासत्तावाद के विरुद्ध, राष्ट्र को छिन्न-भिन्न करने वाली तथा उसके निवासियों के पारस्परिक सम्बन्ध बिगाड़ने वाली है।

सन् १९०९ ई० के शासन सुधारों से जिस अनिष्टकारी प्रथा को मान्यता प्राप्त हुई थी, उस पर सन् १९१९ ई० के सुधारों ने भी अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी। इस बार सिक्खों के लिए भी यह प्रथा जारी कर दी गयी। सिक्ख नेताओं कथन यह रहा है कि यह राष्ट्र-घातक प्रथा बन्द की जाय, परन्तु यदि मुसलमानों के साथ रियायत की जाती है तो सिक्खों के साथ भी क्यों न की जाय। अधिकारियों ने मुसलमानों के लिए इस प्रथा को बन्द कर देने की अपेक्षा, इसे सिक्खों के लिए भी जारी करके अपनी कूट नीति का परिचय दिया।

सन् १९३५ के शासन-सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन की वृद्धि—यह आशा की जाती थी कि प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना का दावा करने वाले आगामी शासन-सुधारों में इस दोष का निवारण कर दिया जायगा। परन्तु यह नहीं हुआ। इसके विपरीत सन् १९३५ ई० के विधान से इसे और बढ़ा दिया गया। अब यहां १५ प्रकार के निर्वाचक संघ हैं:—

१—साधारण
२—सिक्ख
३—मुसलिम
४—ऐंग्लो इण्डियन
५—योरपियन
६—भारतीय ईसाई
७—व्यापार, उद्योग और खणिज
८—ज़मींदार
९—विश्व-विद्यालय
१०—श्रम
११—स्त्रियां—साधारण
१२— ,, —सिक्ख
१३— ,, —मुसलिम
१४— ,, —ऐंग्लो-इंडियन
१५ —,, —भारतीय ईसाई

महात्मा गांधी ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर हरिजनों के साथ समझौता करा दिया, और उनके लिए साधारण निर्वाचक संघों से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों में ही स्थान सुरक्षित करा दिये।* अन्यथा, उपर्युक्त सूची में एक की और वृद्धि होकर निर्वाचक संघ १६ प्रकार के हो जाते। भारतीय ईसाइयों ने पृथक् निर्वाचन की मांग नहीं की थी, उन्हें भी यह प्रदान किया गया। विशेष दुख की बात तो यह है कि महिला समाज को भी, साम्प्रदायिक आधार पर मताधिकार देकर उनकी इस समय तक की एकता का लोप कर दिया गया है; उन्हें जाति और धर्म के भेद-भावों से विभक्त कर दिया गया है। अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की कोई महिला सदस्य किसी क्षेत्र के पूर्ण स्त्री-समाज की प्रतिनिधि न होकर केवल अपनी जाति या धर्म विशेष की स्त्रियों की प्रतिनिधि होगी। इससे महिला समाज की उन्नति में भयंकर बाधा उपस्थित होना स्पष्ट है।

साम्प्रदायिक निर्वाचन से हानि—आज कल मुसलमान उम्मेदवारों को केवल मुसलमान निर्वाचकों का, और हिन्दू उम्मेदवारों को केवल हिन्दू निर्वाचकों का मत संग्रह करना होता है। प्रायः ये उम्मेदवार अपनी-अपनी जाति में जितने अधिक 'कट्टर' प्रसिद्ध होते हैं, उतने ही इन्हें अधिक मत मिलने की आशा होती है।

* इसके विषय में विशेष अगले अध्याय में लिखा जायगा :

इसलिए निर्वाचनों के पहले अपनी 'कट्टरता' की विज्ञप्ति करना भी कुछ उम्मेदवार अपना आवश्यक कार्य समझते हैं। ये लोग दूसरे सम्प्रदाय या जाति वालों की निन्दा करके, अपनी जाति-हितैषिता या सम्प्रदाय-भक्ति का परिचय देकर व्यवस्थापक सभाओं में जाने का प्रयत्न करते हैं। इससे भिन्न-भिन्न जातियों में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य बढ़ता जाता है। वास्तव में, साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था होने की दशा में साधारण मतदाता भी व्यवस्थापक सभा में योग्य प्रतिनिधि भेजने की चिन्ता नहीं करते; उम्मेदवार की योग्यता या अयोग्यता का विचार नहीं किया जाता; अथवा यों कह सकते हैं कि जो उम्मेदवार अन्य सम्प्रदायों के दोषों या अवगुणों को दिखाने में जितना अधिक समर्थ होता है, उतना ही वह अधिक योग्य समझा जाता है। ऐसी परिस्थिति में, साम्प्रदायिक पृथक्ता के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा, व्यवस्थापक सभाओं में देश या प्रान्त के उपयोगी, नागरिक-हितकर क़ानून बनाने की ओर यथेष्ट ध्यान कैसे दिया जा सकता है!

यह समझना भूल है कि कट्टर विचारों के आदमी ही अपनी-अपनी जाति के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। वास्तव में कट्टरता की वृद्धि जिन कारणों से हुई है, उनमें से एक मुख्य यह है कि शासन-व्यवस्था में साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन को स्थान दिया गया है। पिछले निर्वाचनों से यह भली भांति सिद्ध हो चुका है कि हिन्दुओं की निन्दा करने वाले व्यक्ति मुसलमानों के, या मुस्लिम-द्रोही व्यक्ति

हिन्दुओं के सच्चे प्रतिनिधि नहीं होते। वे तो अपने स्वार्थ-साधन या नेतागिरी के अभिलाषी होते हैं, और जब तक साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था रहेगी, तब तक उनका अस्तित्व बना-बनाया है।

साम्प्रदायिक निर्वाचन होने की दशा में व्यवस्थापक सभा में अल्प-संख्यक समुदाय के सदस्यों की, विपक्षी दल के बहुमत के आगे कुछ नहीं चलती। वे सरकारी दल के मुखापेक्षी रहते हैं। यदि पराधीन देश में, वे किसी विषय में सरकारी दल के सहारे से जीत भी जाते हैं तो इस जीत से उनकी वास्तविक योग्यता या सामर्थ्य नहीं बढ़ती, वरन् उनमें परावलम्बन की भावना बढ़ती है, और वे देश की पराधीनता की कड़ियों को मज़बूत तथा अधिक स्थायी बनाने में सहायक होते हैं।

लाभ कुछ भी नहीं—निर्वाचन के अवसर पर मुसलमानों, हिन्दुओं या सिक्खों आदि का अलग-अलग दल होता है। पर उसके बाद ही इन दलों का लोप हो जाता है। व्यवस्थापक सभाओं में समय-समय पर जो भिन्न-भिन्न दल बनते हैं, उनका आधार जाति-गत नहीं होता, वरन् राजनैतिक या आर्थिक आदि होता है। प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख या ईसाई आदि अपने-अपने मत के अनुसार इन में से किसी एक दल का सदस्य बन जाता है। पृथक् निर्वाचन के आधार पर, किसी सदस्य को उसके मन-चाहे दल में सम्मिलित होने से रोका नहीं जा सकता। जाति-गत दलों की क्षण-भंगुरता से

यह स्पष्ट है कि पृथक् निर्वाचन से चुने हुए सदस्यों से उनकी जाति का लाभ नहीं होता।

यह कहा जा सकता है कि कभी-कभी व्यवस्थापक सभाओं में ऐसे प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं कि सरकारी नौकरियां अमुक अनुपात में हिन्दुओं और मुसलमानों आदि को दी जायँ, और, ऐसी दशा में हिन्दू या मुसलमान सदस्य अपनी जाति का पक्ष समर्थन कर सकते हैं। इस विषय में स्मरण रहे कि यदि किसी जाति के लाखों करोड़ों आदमियों में से दस पाँच को विशेष रियायत से, या साम्प्रदायिक लिहाज़ से सरकारी नौकरियाँ मिल भी जायँ तो इससे उस जाति का विशेष लाभ नहीं होता। जाति का सामुहिक या वास्तविक हित होने के लिए तो यह आवश्यक है कि उस जाति के आदमियों की योग्यता बढ़े, और वे कुछ खास रियायतों का आसरा न तक कर स्वावलम्बी और साहसी बनें।

यदि थोड़ी देर के लिए यही मान लिया जाय कि किसी जाति के आदमी व्यवस्थापक सभाओं में जाकर अपनी जाति के इने-गिने आदमियों के लिए तो कुछ रियायतें प्राप्त कर ही सकते हैं—जो रियायतें दूसरी जाति के आदमी उन्हें नहीं दिलाते—तो यह काम तो व्यवस्थापक सभाओं में उस जाति के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित करने से, और संयुक्त निर्वाचन पद्धति व्यवहृत करने से भी हो सकता है (जिसके सम्बन्ध में विशेष विचार आगामी अध्याय में किया गया है)। इसके वास्ते पृथक् निर्वाचन की तो

कोई आवश्यकता ही नहीं है, जिससे कि जाति-गत राग-द्वेष बढ़ता है।

साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन के पक्षपाती विचार करें—वर्तमान अवस्था में विशेषतया मुसलमान (इन में से भी वे जो अनुदार विचारों और संकीर्ण दृष्टि-कोण वाले हैं), अपने पृथक् निर्वाचन के कल्पित अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। उनकी समझ में यह बात नहीं आती कि पृथक् निर्वाचन राष्ट्रीय दृष्टि से तो अनर्थकारी है ही, स्वयं उनके लिए भी पर्याप्त हानिकर है। प्रो० अब्दुल मजीद खाँ ने 'ट्रिब्यून' में ठीक लिखा है:—

"साम्प्रदायिक चुनाव अल्प-संख्यक जातियों के पारस्परिक मनमोटाव को स्थिर कर देता है, इस प्रकार की रियायतों से जातियों की स्वाभाविक उन्नति रुकजाती है, उन में आत्म-विश्वास की भावना नहीं आती, और वे रियायती नीति की मियाद बढ़ाने की मांग जारी रखती हैं। जिस जाति या सम्प्रदाय को अपनी कमज़ोर या पिछड़ी हुई हालत के कारण, खास प्रतिनिधित्व मिल जाता है, उसे अपनी सुरक्षा के अधिकार की गारण्टी मिल जाती है, वह अपने को अधिक शिक्षित या योग्य बनाने की चिन्ता छोड़ देता है। दूसरी ओर, बहु-संख्यक जातिवाले यह अनुभव करने लगते हैं कि उन्होंने अपने कमज़ोर देश-भाइयों के लिए, जो करना था, कर दिया, और उन्हें अपने प्रयोजन सिद्ध करने के लिये अपनी शक्ति प्रयोग करने का अधिकार है। राजनैतिक जीवन का सार 'दो और लो' की नीति नष्ट होजाती है, दोनों जातियाँ अपने को नियंत्रण में नहीं रख सकतीं। पृथक् चुनाव के परिणाम-स्वरूप उन्नति होनी तो दूर रही,

उलटी, मुसलमानों की अवनति हुई है। सन् १९०९ ई० की अपेक्षा अब मुसलमान भिखारियों और कर्ज़दारों की संख्या बढ़गयी है, और मुस्लिम मुजरिमों की संख्या भी कम नहीं हुई। शिक्षित मुसलिमों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई। सम्प्रदायवादियों ने कभी सम्मिलित चुनाव का अमृत चखने की कोशिश नहीं की, वही अकेला इस राष्ट्रीय बीमारी को दूर कर सकता है।"

उपर्युक्त पंक्तियों पर मुसलमानों को, एवं एंग्लो-इंडयन आदि उन अन्य जातियों के आदमियों को गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए, जो मुसलमानों की देखा-देखी साम्प्रदायिक निर्वाचन के 'अधिकार' को प्राप्त करने के लिए तरह-तरह का आन्दोलन किया करते हैं।

चौथा अध्याय

संयुक्त निर्वाचन

'इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त निर्वाचन से वर्तमान वैमनस्य यदि दूर न भी हुआ तो उसे बढ़ाने वाला एक कारण दूर हो जायगा, तथा दोनों (हिन्दू और मुसलिम) दलों के नेताओं को परस्पर सहायता की आवश्यकता प्रतीत होने लग जायगी। सम्भव यह भी है कि दोनों समाजों के विचारशील पुरुष भी सहयोग के लाभ देखने लग जायँ। मूलतः दोनों का स्वार्थ एक ही है।'

—'आज'

'साम्प्रदायिक बुराइयों और इससे पैदा होने वाले रोगों की अचूक दवा संयुक्त निर्वाचन ही है।'

—प्रो० अब्दुल मजीद खाँ

संयुक्त निर्वाचक संघों की आवश्यकता—पृथक् निर्वाचन से होने वाली अनेकता राष्ट्रीयता का गला घोट रही है। जनता के वास्तविक स्वराज्य के लिए ऐसी व्यवस्था की जाने की आवश्यकता है कि किसी उम्मेदवार के लिए न केवल उसकी ही जाति वाले, वरन् दूसरी जाति के भी निर्वाचक अपना मत दे सकें। अथवा, यों कह सकते हैं कि निर्वाचक संघ जाति-गत न रहें, वे संयुक्त होने चाहिएँ। उदाहरणार्थ, यदि एक ज़िले या कमिश्नरी से

एक हिन्दू और एक मुसलमान सदस्य निर्वाचित करना है तो इस निर्वाचन क्षेत्र में ऐसी व्यवस्था न होनी चाहिए कि इसके केवल मुसलमान निर्वाचक, मुसलमान सदस्य को चुनें और हिन्दू निर्वाचक, हिन्दू सदस्य को। इसके विपरीत, क़ानून ऐसा होना चाहिए कि मुसलमान सदस्य के चुनाव में हिन्दू निर्वाचक, और हिन्दू सदस्य के चुनाव में मुसलमान निर्वाचक भी अपना मत दे सकें।*

संयुक्त निर्वाचन से राष्ट्रीयता की वृद्धि—संयुक्त निर्वाचन होने की दशा में उम्मेदवार अपनी जाति या सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य जाति या सम्प्रदाय वालों के भी मत प्राप्त करना चाहता है, और, ये मत उसे तभी मिल सकते हैं जब वह अपना दृष्टिकोण संकुचित या जाति-गत न रखकर उदार तथा राष्ट्रीय रखे, और अपने व्यवहार से अन्य जाति वालों का भी विश्वास-भाजन बन सके। इस प्रकार संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था से, प्रतिनिधि बनने वाले उम्मेदवारों को गौण रूप में उदार तथा राष्ट्र-हितैषी होने, और सङ्कीर्ण जाति-गत विचार छोड़ने, की प्रेरणा मिलती है।

संयुक्त निर्वाचन का समर्थन—कुछ आदमी कह दिया करते हैं कि बहु-संख्यक सम्प्रदाय के आदमी (हिन्दू) ही संयुक्त निर्वाचन का इतना समर्थन तथा आग्रह करते हैं। इस कथन में कुछ तत्व नहीं है। हिन्दुओं की बात जाने दें, पाश्चात्य देश के

*इसी प्रकार योरपियनों या सिक्खों आदि के लिए भी पृथक् जाति-गत निर्वाचक-संघ न रहने चाहिएँ।

राजनीतिज्ञों के विचार देखिए; एक-एक ने संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में कैसे सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं ! हम पहले कह चुके हैं कि भारतवर्ष में इस प्रथा को प्रचलित करने वाले अँगरेज़ अधिकारी भी सिद्धान्त से तो संयुक्त निर्वाचन को ही अच्छा कहते हैं, किसी ने पृथक् या साम्प्रदायिक निर्वाचन को संयुक्त निर्वाचन से बेहतर बताने का दुस्साहस नहीं किया। हां, वे अपनी लाचारी का, भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति का, आसरा लेते रहे हैं। खेद है कि वे कभी यह नहीं सोचते कि साम्प्रदायिक निर्वाचन यहां के जाति-विद्वेष रूपी रोग का उपाय न होकर स्वतः उसका एक मुख्य कारण है। अस्तु, सौभाग्य से भारतवर्ष में उन मुसलमानों का अभाव नहीं है, जो राजनैतिक विषयों को विशुद्ध दृष्टि से देखते हैं, और उन पर स्पष्ट मत प्रकट करते हैं। ऐसे कुछ व्यक्तियों का मत हमने अन्यत्र उद्धृत किया है। प्रसङ्ग-वश एक सज्जन का मत यहां भी दिया जाता है। यह उनके सुदीर्घ अनुभव के आधार पर होने के कारण बहुत महत्वपूर्ण है।

एक मुसलमान विचारपति का मत—निज़ाम राज्य के विचारपति नवाब मिर्ज़ायार जंग समीउल्लाबेग ने कहा है* कि "सन् १९१६ ई० में हमने पृथक् निर्वाचन का समर्थन किया था। उस समय हम अज्ञात मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे, इसलिए सङ्कट की कल्पना कर उसकी निवृत्ति का यह उपाय भी आवश्यक प्रतीत हुआ था। तब से अब तक दस साल हो गये हैं, यदि सावधानता उस समय स्वतंत्र

* 'आज' के आधार पर।

निर्वाचन पर ज़ोर दे रही थी तो दस साल का अनुभव अब बता रहा है कि स्वतंत्र निर्वाचन से जो लाभ हो सकते हैं, वे सब संयुक्त निर्वाचन से भी हो सकते हैं, बशर्ते कि मुसलमान सदस्यों की संख्या निर्धारित कर दी जाय। प्रकृत अवस्था का विचार कीजिए। स्वतंत्र क्षेत्र से जो मुसलमान सदस्य निर्वाचित हुए हैं, वे न भिन्न-भिन्न जातियों में बढ़ने वाले द्वेष की बाढ़ को रोक सके हैं, और न अपनी जाति के लिए विशेष अधिकार ही प्राप्त कर सके हैं।" नव्वाब साहब ने संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र से होनेवाले लाभ भी बताये हैं। आप कहते हैं कि "संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र से कम से कम यह तो होगा कि हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर मिलने का अवसर अधिक मिलेगा, एक दूसरे की सहायता प्राप्त कर लेने के अवसर अधिक उपस्थित होंगे, उनके सहयोग के अवसर बढ़ जायँगे, एक दूसरे को निमंत्रणादि देने की प्रवृत्ति बढ़ जायगी, संयुक्त सभाएँ होने लगेंगी, एक-दूसरे के भावों का अधिक विचार किया जाने लगेगा; सारांश, इससे वह भाव कुछ घट जायगा जो वर्षों से दोनो के बीच का अन्तर बढ़ाये चला जा रहा है, और इस प्रकार स्वाभाविक सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होगा। हो सकता है कि वर्तमान रोग की उत्पत्ति स्वतन्त्र निर्वाचन से नहीं हुई है, पर स्वतन्त्र निर्वाचन में रोग-निवारण के जो गुण नहीं हैं, वे संयुक्त निर्वाचन में हो सकते हैं।"

एक आशङ्का और उसका निवारण—कुछ आदमी संयुक्त निर्वाचन पद्धति को पृथक् अथवा साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति की अपेक्षा अच्छा तो मानते हैं, पर उन्हें एक आशंका होती है, वह

यह कि संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था होने से व्यवस्थापक सभाओं में अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि कम पहुँचेंगे। हम पहले कह चुके हैं कि सिद्धान्त से व्यवस्थापक सभाओं में जानेवाले प्रतिनिधि जातिगत आधार पर नहीं जाने चाहिएँ, ऐसे प्रतिनिधि वहां जाकर अपनी जाति का कोई वास्तविक हित-साधन नहीं कर सकते। इस दृष्टि से किसी जाति के प्रतिनिधि कुछ कम जायँ, या अधिक, यह विचार ही महत्व-हीन है। परन्तु जो लोग अभी यह बात समझने में असमर्थ हैं, और भिन्न-भिन्न अल्प-संख्यक जातियों के यथेष्ट प्रतिनिधि न पहुँच सकने की आशंका से ही संयुक्त निर्वाचन का विरोध करते हैं, उन्हें विदित हो कि उनकी उपर्युक्त आशंका निर्मूल है, कारण कि इनके प्रतिनिधियों की संख्या तो क़ानून द्वारा निर्धारित है, और जबतक देश की परिस्थिति में सम्यग् सुधार न हो, वह निर्धारित रखी जा सकती है।

अल्प-संख्यक जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था; मुसलमानों के सम्बन्ध में विचार—अब हम यह बतलाते हैं कि अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधियों के लिए स्थान किस प्रकार सुरक्षित रहते हैं, अर्थात् इस दशा में मतों की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है। कल्पना करो कि एक संयुक्त निर्वाचक-संघ से तीन प्रतिनिधि लेने हैं, और क़ानून से यह निर्धारित कर दिया गया है कि उन में से दो हिन्दू, और एक मुसलमान, होंगे। मानलो हिन्दू उम्मेदवार चार हैं, और मुसलमान दो। संयुक्त निर्वाचन होने के कारण, हिन्दू हो या मुसलमान, प्रत्येक मतदाता को तीन मत इस प्रकार देने

होंगे:—दो हिन्दू उम्मेदवारों को एक-एक मत, और एक मुसलमान को एक मत। मतदाता चाहे तो अपने एक या दो मतों का उपयोग न करे। परन्तु वह यह नहीं कर सकता कि दो से अधिक हिन्दू उम्मेदवारों को, या एक से अधिक मुसलमान उम्मेदवार को, मत दे। स्मरण रहे कि इस प्रणाली में मतदाता एक उम्मेदवार को एक ही मत दे सकता है, अधिक नहीं।*

अब कल्पना करो कि हिन्दू उम्मेदवारों को मत निम्न लिखित प्रकार से मिलते हैं:—

पहला उम्मेवार	राम	८०००
दूसरा ,,	मोहन	७५००
तीसरा ,,	सोहन	७२५०
चौथा ,,	गोविन्द	६८००

और, मुसलमान उम्मेदवारों के मत इस प्रकार हैं:—

पहला उम्मेदवार	अब्दुल्ला	७०००
दूसरा ,,	रहीम	५८००

अब यदि क़ानून द्वारा मुसलमानों के लिए एक स्थान सुरक्षित न हो तो मत-गणना के विचार से राम, मोहन और सोहन तीनों हिन्दू ही उम्मेदवार निर्वाचित हो जायँ; किसी मुसलमान उम्मेदवार के निर्वाचित होने का अवसर न आये; कारण, मुसलमान उम्मेदवारों में

* इस लिए इस प्रणाली को 'एक उम्मेदवार—एक मत' पद्धति कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में विशेष आठवें अध्याय ('मत-गणना प्रणाली') में कहा गया है।

से जिसे सब से अधिक मत मिले हैं, उसे भी तीसरे हिन्दू उम्मेदवार सोहन से कम मत प्राप्त हैं। परन्तु क्योंकि एक स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित है, अतः हिन्दू उम्मेदवारों में से राम और मोहन ये दो ही निर्वाचित घोषित किये जायेंगे। तीसरे प्रतिनिधि के चुनाव के लिए मुसलमान उम्मेदवारों में से जिसे सबसे अधिक मत मिले हैं, उसे चुना जायगा। इस प्रकार अब्दुल्ला भी निर्वाचित घोषित किया जायगा, यद्यपि उसे हिन्दू उम्मेदवार सोहन की अपेक्षा कम मत मिले हैं।

हरिजनों के सम्बन्ध में विचार—पिछले अध्याय में यह कहा जा चुका है कि कुछ महत्वाकांक्षी और साम्प्रदायिक विचार रखनेवाले हरिजन नेताओं के भावों के आधार पर सरकार ने पहले हरिजनों को भी पृथक् निर्वाचन का अधिकार देने का विचार किया था, परन्तु महात्मा गांधी ने आजीवन उपवास आरम्भ करके वह बात चलने न दी। उन्होंने हरिजनों के साथ ऐसा समझौता करा दिया, कि उनके प्रतिनिधियों के लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में निर्धारित स्थान सुरक्षित रहें, परन्तु इन प्रतिनिधियों का चुनाव पृथक् निर्वाचक-संघों द्वारा न होकर संयुक्त निर्वाचन पद्धति से ही हो। इसके लिए यह विधि निश्चित की गयी कि जितने हरिजन साधारण निर्वाचन में भाग लेने वाले अर्थात् निर्वाचक हों, वे व्यवस्थापक सभा के प्रत्येक सुरक्षित स्थान के लिए पहिले चार-चार व्यक्तियों को चुनें। उक्त निर्वाचकों

को एक-एक ही मत देने का अधिकार होगा। प्रारम्भिक चुनाव में जिन चार व्यक्तियों को सबसे अधिक मत मिलेंगे, वे ही साधारण निर्वाचन में उम्मेवार होंगे। उनके लिए हरिजन एवं अन्य हिन्दू निर्वाचक अपना-अपना मत देंगे, चारों हरिजन उम्मेदवारों में से जिसके पक्ष में सबसे अधिक मत आयेंगे, वह निर्वाचित घोषित किया जायगा। इस प्रकार, हरिजन प्रतिनिधि का चुनाव संयुक्त निर्वाचन तथा सरक्षण सिद्धान्त के अनुसार होगा।

हरिजनों के निर्वाचन में, उस विधि से कुछ अन्तर है, जो हमने उपर मुसलमानों के सम्बन्ध में बतायी है। उदाहरणवत, यदि किसी निर्वाचक-संघ से पांच उम्मेदवार हैं, दो हरिजन* और तीन सवर्ण हिन्दू, और उनमें से एक हरिजन और दो सवर्ण हिन्दू लिये जाने वाले हैं, इनके निर्वाचन में कोई मतदाता यदि चाहे तो अपने तीनों मत किसी एक हरिजन या किसी एक सवर्ण हिन्दू उम्मेदवार को दे सकता है।† हां, जब मत-गणना होगी तो दोनों हरिजनों में से जिस हरिजन उम्मेदवार के लिए

*पहले कहा गया है कि प्रत्येक हरिजन-स्थान के लिए चार-चार उम्मेदवार चुने जायंगे, यहां यह मान लिया जाता है कि उक्त चार उम्मेदवारों में से दो बैठ गये हैं, वे अपने चुनाव के लिए खड़े नहीं होते।

†यह पद्धति 'एकत्रित मत पद्धति' कही जाती है। इसके विषय में विशेष आठवें अध्याय (मत-गणना प्रणाली) में लिखा गया है।

अधिक मत मिलेंगे, वह निर्वाचित घोषित किया जायगा, चाहे उसे सवर्ण हिन्दू उम्मेदवारों में से सबसे कम मत पानेवाले व्यक्ति से भी कम मत मिले हों। अर्थात् यदि संरक्षण न होता तो सम्भव था कि मतों के हिसाब से तीनों ही सवर्ण हिन्दुओं का निर्वाचन हो जाता, और किसी हरिजन उम्मेदवार को उनके मुक़ाबिले में सफलता न मिलती; पर अब हरिजनों के लिए स्थान संरक्षित होने से हरिजन उम्मेदवार का मुक़ाबिला सवर्ण हिन्दुओं से है ही नहीं; उसे अपनी सफलता के लिए केवल हरिजन उम्मेदवारों में ही सबसे अधिक मत प्राप्त करने हैं।

विशेष वक्तव्य—इस प्रकार संयुक्त निर्वाचन में प्रतिनिधियों के स्थानों का संरक्षण दो प्रकार से हो सकता है, (१) 'एक उम्मेदवार-एक मत' पद्धति से, और (२) 'एकत्रित मत' पद्धति से। इन पद्धतियों के सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा। अस्तु, संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था से यह आशंका करना व्यर्थ है कि अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि कम चुने जायेंगे। पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संयुक्त निर्वाचन पद्धति जाति-गत वैमनस्य को दूर करने और जनता में देश-प्रेम का भाव बढ़ाने में बहुत सहायक होगी। अतः हमें इसे क़ानून द्वारा प्रचलित कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की सरकार ने अपने प्रान्त में विगत वर्ष (जब कि वहां कांग्रेस सरकार थी) स्थानीय संस्थाओं के लिए संयुक्त

निर्वाचन की प्रथा को स्वीकार करके उन साम्प्रदायिक मुसलिम नेताओं को बहुत ही अच्छा जवाब दिया है, जो सदैव यह कहा करते हैं कि मुसलमान कभी भी साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन का त्याग नहीं कर सकते। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त विशेषतया मुसलमानों का प्रान्त है, और, उसका साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने का यह प्रयत्न बहुत आशाप्रद है।

पाँचवाँ अध्याय

निर्वाचक

जब तक तुम्हारे देश-बन्धुओं में से एक भी ऐसा है, जिसका राष्ट्रीय जीवन की उन्नति के लिए अपना चुना हुआ प्रतिनिधि नहीं है, तुम्हारा देश सब का, और सब के लिए नहीं है, जैसा कि वह होना चाहिए।

—मेज़िनी

मेरा तो मोटा सिद्धान्त यह है कि नागरिकों का मताधिकार, चाहे वे नागरिक कम हों या ज्यादह—वे ज़ादह हों तो और अच्छा है—राज्य की शक्ति को बढ़ाने वाला होता है।

—ग्लेडस्टन

मताधिकार का महत्व—जो व्यक्ति व्यवस्थापक सभा (तथा म्युनिसिपल बोर्ड या ज़िला-बोर्ड) के सदस्यों के निर्वाचन में मत देने के अधिकारी होते हैं, उन्हें निर्वाचक या मत-दाता ('वोटर') कहते हैं, और उनका यह अधिकार 'मताधिकार' कहा जाता है। इस अधिकार का आजकल बड़ा महत्व है; कारण, जो व्यक्ति व्यवस्थापक संस्थाओं के सदस्य होते हैं, वे मतदाताओं के इस अधिकार के प्रयोग से ही तो चुने जाते हैं। जिस दल के, या जिन विचारों वाले आदमियों के पक्ष में मतदाताओं का बहुमत नहीं होता, वे, प्रतिनिधि अर्थात्

व्यवस्थापक सभा के सदस्य नहीं बन सकते। इस प्रकार देश की व्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से व्यवस्थापक सभा के सदस्यों पर, और परोक्ष रूप से देश के निर्वाचकों या मतदाताओं पर निर्भर है।

जिन व्यक्तियों को मताधिकार होता है, वे यह अनुभव करते हैं कि राज्य के शासन में हमारा भी कुछ भाग है, चाहे वह परोक्ष रूप से ही क्यों न हो। इसलिए यह आवश्यक है कि यह अधिकार देश के अधिक से अधिक व्यक्तियों को हो, केवल किसी विशेष श्रेणी, विशेष जाति, धर्म या पेशे वाले को न हो। इसमें अमीर ग़रीब, स्त्री पुरुष, मालिक मज़दूर, कृषक ज़मीदार, हिन्दू मुसलमान आदि का विचार न होना चाहिए।

किन्हें मताधिकार नहीं मिलना चाहिए?—कुछ पाठक सोचते होंगे कि यह अधिकार सभी को, शत-प्रति-शत जनता को मिलना चाहिए, परन्तु तनिक विचार करने पर वे समझ जायेंगे कि राष्ट्र के अपरिपक्व या विकृत अंगों को मताधिकार मिलना उचित नहीं है। इसी प्रकार से, उन्नत प्रजातंत्र राज्यों में भी बालकों (प्रायः अठारह-बीस वर्ष से कम आयु वालों) को तथा पागलों को यह अधिकार नहीं दिया जाता; कारण, साधारणतया उनमें नागरिक प्रश्नों पर विचार करके उचित मत देने की योग्यता नहीं होती।

क़ैदियों का क़ैद रहना ही इस बात का प्रमाण माना जाता है कि उन्होंने राज्य के नियमों का उलंघन किया है। इसलिए उन्हें बहुधा

कैद की अवधि के बाद भी कुछ समय के लिए मताधिकार से वंचित रखा जाता है।

इसमें यह विचारणीय है कि सब क़ैदी समान नहीं होते। सम्भव है, बहुत से आदमी किसी ख़ास शासन विधान के विरुद्ध व्यवहार करने के कारण क़ैद किये जायँ, और इनका कोई नैतिक अपराध न हो, वरन् जिस कार्य के लिए इन्हें दंड मिला है, वह देश-भक्ति या परोपकार की भावना से किया गया है। पराधीन तथा कुछ अन्य देशों में इन लोगों को 'राजनैतिक अपराधी' नहीं माना जाता तथापि इन्हें कैद किया जाना राष्ट्रीय दृष्टि से अनुचित है। फिर, इस कैद के आधार पर, कैद की अवधि समाप्त होने पर भी कुछ समय तक इनका निर्वाचन अधिकार से वंचित होना और भी अनुचित है। अतः प्रत्येक राज्य में राजनैतिक तथा अन्य कैदियों में स्पष्ट अन्तर होना चाहिए, और कम से कम अहिंसक राजनैतिक कैदियों को, कैद की अवधि के बाद तो किसी भी दशा में मताधिकार से वंचित न किया जाना चाहिए।

विदेशियों या अ-नागरिकों को भी प्रायः किसी देश में मताधिकार नहीं मिलता, क्योंकि इनकी इस देश से वैसी सहानुभूति नहीं होती, जैसी अपने देश से होती है। इसी विचार से एक प्रान्त, ज़िले या नगर के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करने में बहुधा दूसरे प्रान्त, ज़िले या नगर के निवासियों को मताधिकार नहीं दिया जाता। परन्तु कुछ समय निवास करने तथा कुछ नियमों का पालन करने पर उन्हें यह अधिकार दे दिया जाता है।

निर्वाचक होने के अधिकारी—उपर्युक्त व्यक्तियों को छोड़कर और कोई व्यक्ति निर्वाचक होने का अनधिकारी नहीं माना जाना

चाहिए। अब हम इस सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार करते हैं। यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति राष्ट्र, प्रान्त, ज़िले या नगर आदि के अङ्ग हैं, अर्थात् उसके नागरिक हैं, और जिन्हें उसके नियमों से शासित होना है, उन सब को अपने-अपने क्षेत्र में मताधिकार मिलना आवश्यक है। अन्यथा यदि किसी ख़ास श्रेणी के या विशेष स्वार्थ वाले व्यक्तियों को ही मताधिकार होगा, तो उनके द्वारा दूसरों पर अत्याचार होने की सम्भावना रहेगी। इस प्रकार मताधिकार देने में अमीर ग़रीब, या स्त्री पुरुष, मालिक मज़दूर, अथवा रङ्ग, जाति या धर्म आदि का विचार न होना चाहिए। हाँ, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, एक शर्त ज़रूरी है; राष्ट्र के जो अङ्ग विकृत और अपरिपक्व हों, अर्थात् जो व्यक्ति पागल या नाबालिग़ आदि हों, उन्हें इस अधिकार से वंचित रखा जाना ही ठीक है, क्योंकि उनके द्वारा इसका दुरुपयोग होने की बहुत सम्भावना है। इस सिद्धान्त को सामने रखते हुए मताधिकार सम्बन्धी नियम बनने चाहिएँ। इस विषय की अन्य बातों को तो, कम से कम, सिद्धान्त रूप से सब लोग मानने लगे हैं, परन्तु स्त्रियों को मताधिकार मिलने के विषय में अभी तक भी बहुत मत-भेद है। अतः इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

स्त्रियों का मताधिकार——लोगों का अधिकांश में यही मत है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र उनका घर है, राजनैतिक झंझटों में पड़ने से वे अपने गार्हस्थ कर्तव्यों से विमुख हो जायँगी। हम साधारणतः यह बात जरूर मानते हैं कि स्त्रियों को पुरुष की सहधर्मणी, बच्चों की माता,

तथा घर की मालकिन आदि के रूप में बहुत-कुछ कार्य करना आवश्यक है, परन्तु उनमें राज्य-कार्य में भाग लेने की जितनी योग्यता हो, उन्हें उसके उपयोग का अधिकार क्यों न दिया जाय!

कुछ लोगों का कथन है कि स्त्रियों को मताधिकार देने का अर्थ यह होगा कि पुरुषों (उन स्त्रियों के पतियों) को दो-दो मत मिल जायेंगे, क्योंकि प्रायः प्रत्येक स्त्री, अपने पति के प्रभाव से उसकी ही इच्छानुसार मत देगी; यदि कभी ऐसा न हुआ तो पति पत्नी में विरोध होगा और घर की सुख-शान्ति नष्ट हो जायगी। परन्तु, सोचना चाहिए कि शिक्षा-प्रचार की वृद्धि से अधिकाधिक योग्य होकर क्या स्त्रियां अपना स्वतन्त्र मत स्थिर न कर सकेंगी? यदि इस समय स्त्रियों का मत स्वतन्त्र नहीं होता, या वे उसे प्रकट नहीं कर सकतीं, तो उनकी इस मानसिक अवस्था को सुधारने का एक उपाय भी तो उन्हें शिक्षा तथा मताधिकार देना ही है। पुनः, मत-भेद के कारण पति पत्नी में विरोध होने की बात में भी कुछ सार नहीं है। सच्चा प्रेम वही है, जो मत-भेद के होते हुए भी रह सकता है। क्या इसका इस समय अभाव है? क्या पिता पुत्र में, भाई-भाई में अनेकशः मत-भेद नहीं होता, और क्या इस मत-भेद के होते हुए भी उनके परस्पर प्रेम-पूर्वक रहने के असंख्य उदाहरण विद्यमान नहीं हैं? फिर, पति पत्नी के मत-भेद से ही घर की सुख-शान्ति के भङ्ग होने की आशंका क्यों की जाती है!

यद्यपि कुछ देशों में स्त्रियों को मताधिकार मिलता जा रहा है, अभी

तक बहुत ही कम को यह अधिकार मिल पाया है। प्रत्येक देश में मोटे हिसाब से जितने पुरुष होते हैं, उतनी ही स्त्रियाँ होती हैं, अर्थात् स्त्रियां कुल जन-संख्या की आधी होती हैं। प्रजातन्त्र या उत्तरदायी शासन पद्धति वाले राज्यों के इन आधे नागरिकों में से बहुत-सों को मताधिकार से वंचित रखना आश्चर्यजनक है। स्त्रियों की अल्पज्ञता का बहाना भी ठीक नहीं। जहाँ कहीं वे यथेष्ट योग्य न भी हों, वहाँ उन्हें योग्य बनाने का यत्न करना चाहिए। निदान, उन्हें मताधिकार से वंचित रखा जाना अनुचित है।

निर्वाचकों की योग्यता; शिक्षा—अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि निर्वाचकों की योग्यता क्या हो। यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक निर्वाचक को राजनैतिक विषयों का पूर्ण ज्ञान होना तो सम्भव नहीं, परन्तु क्या उससे इतनी आशा भी न रखी जाय कि वह साधारण लिखना पढ़ना तथा हिसाब तो जानता हो? अवश्य। इस लिए प्रत्येक व्यक्ति को इतनी शिक्षा पाने के लिए समुचित सुविधा मिलनी चाहिए। इसका यह आशय नहीं कि जब तक शिक्षा का यथेष्ट प्रचार न हो, तब तक सर्व साधारण को मताधिकार ही न मिले। प्रायः यह अनुभव हुआ है कि यह अधिकार मिल जाने पर शिक्षा-प्रचार भी अच्छी तरह हो सकता है। अस्तु, सर्व साधारण को शिक्षा-प्राप्ति की सुविधा तभी हो सकती है जब प्रत्येक म्युनिसिपैलटी, ज़िला-बोर्ड और पंचायत अपने-अपने क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा प्रचार की यथेष्ट व्यवस्था करे। भारतवर्ष में अभी तक बहुत कम म्युनिसिपैलटियों ने अपने यहां

यह शिक्षा अनिवार्य और निश्शुल्क की है। ज़िला-बोर्डों ने तो प्रायः अपने क्षेत्र में इस ओर क़दम ही नहीं रखा है। हाँ, अब यह आशा होती है कि वे शीघ्र ऐसा करेंगे।

निदान, शिक्षा-प्राप्त न होने के आधार पर नागरिकों को साधारणतया मताधिकार से वंचित करना ठीक नहीं है। उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड, ज़िला-बोर्ड तथा व्यवस्थापक सभाओं के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिलना ही चाहिए।

श्रम और स्वावलम्बन—कुछ लोगों का कथन है कि मताधिकार उन्हीं नागरिकों को मिलना चाहिए, जो देश के लिए कुछ उत्पादन-कार्य करते हों, अर्थात् जो श्रमजीवी और स्वावलम्बी हों। इस प्रकार ख़ानदानी, अमीर, पूँजीपति, सूदख़ोर, जमींदार और महन्त या मठाधीश आदि इस अधिकार से वंचित रहें। ऐसी पद्धति रूस में प्रचलित है। यद्यपि हम स्वावलम्बन को नागरिकों का एक आवश्यक गुण समझते हैं, और चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति केवल पैत्रिक या धर्मादे की सम्पत्ति के बल पर मौज न उड़ावे, तथापि हमारी सम्मति से वर्तमान पूँजी वालों को मताधिकार से वंचित रखना उचित नहीं।

साम्पत्तिक योग्यता—बहुत से देशों में निर्वाचकों के लिए कुछ सम्पत्ति के मालिक होना भी आवश्यक माना जाता है। साम्पत्तिक योग्यता की माप राज्य-कर या टैक्स देने से की जाती है।* इस

* इस की तह में यह भाव है कि सम्पत्ति वालों से शान्ति रखने और नियम-पालन करने की विशेष आशा होती है; और, जो आदमी टैक्स नहीं देते, उन में नये टैक्स लगाने आदि के सम्बन्ध में यथेष्ट विवेक होने की सम्भावना कम है।

विचार से वे ही व्यक्ति व्यवस्थापक संस्थाओं के लिए अपने प्रतिनिधि चुन सकते हैं, जो निर्धारित परिमाण में कर देते हों; इसके विपरीत, जो उतना कर या टैक्स नहीं देते, उन्हें प्रतिनिधि–निर्वाचन में मताधिकार नहीं होता। ऐसे नियम के होने से बहुत–से नागरिक दिमाग़ी योग्यता रखते हुए भी इस अधिकार से वंचित रहते हैं। यह बहुत अनुचित है। हमारी समझ से मताधिकार के लिए साम्पत्तिक योग्यता की कसौटी इस अर्थवाद के युग का एक अत्याचार है। जो व्यक्ति लोक-हित के प्रश्नों पर भली भांति विचार करने के योग्य है, उसे केवल निर्धारित सम्पत्ति न रहने के कारण ही, मताधिकार से वंचित न किया जाना चाहिए।

बालिग़ मताधिकार—इस प्रकार, निर्वाचक होने के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति रखने या उसके कुछ शिक्षित होने आदि की शर्त रखना अनुचित है। नाबालिग, पागल तथा कुछ अपराधी व्यक्तियों को हमने निर्वाचक होने का अनधिकारी बताया है, उन्हें छोड़ कर अन्य सब व्यक्तियों को मताधिकार मिलना चाहिए। इसे बालिग़ मताधिकार कहा जाता है। सभ्य और उन्नत देशों में यही प्रचलित है; वहां यदि शिक्षा या सम्पत्ति की कोई शर्त रहती है तो वह इतनी न्यून रहती है कि उसके होते हुए भी अधिकांश बालिग़ आदमी अपने इस अधिकार का उपयोग कर सकते हैं। वहां साधारण शिक्षा की शर्त रहती है तो लगभग ९०, ९५ प्रतिशत जनता के शिक्षित होने के कारण, वहां के आदमी उक्त शर्त के कारण मताधिकार से

वंचित नहीं होते। इसी प्रकार, वहाँ उतनी ही सम्पत्ति अनिवार्य समझी जाती है, जितनी वहां प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के पास होती है।

सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अनुसार यहाँ ब्रिटिश भारत के लगभग साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्रियों को, अर्थात् चौदह प्रतिशत जनता को, अथवा बालिग़ व्यक्तियों में से केवल अट्ठाईस प्रतिशत को मताधिकार प्राप्त है।

सरकारी अधिकारियों के इस कथन में कोई सार नही है कि भारतवासी बालिग़ मताधिकार का उपयोग नहीं कर सकेंगे। यह ठीक है कि भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार, और फलतः शिक्षितों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। परन्तु इसका उत्तरदायित्व तो विशेषतया सरकार पर ही है, उसके लिए लोगों को अपने आवश्यक प्राथमिक अधिकार से वंचित क्यों किया जाय! किन्तु, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं यह कोई बात नहीं है कि केवल शिक्षित या पढ़े-लिखे आदमी ही इस अधिकार का उपयोग कर सकते हैं। साधारण अपठित भारतवासी भी अपनी प्राचीन पंचायत प्रथा से अनभिज्ञ नहीं है। वे यह सहज ही जान सकते हैं कि मताधिकार का क्या महत्व है, और कैसे आदमी को मत दिया जाना चाहिए; इत्यादि।*

*यद्यपि कभी-कभी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं कि अशिक्षित मनुष्य को अपने अभीष्ट उम्मेदवार का नाम याद नहीं रहता और इससे निर्वाचन-अफ़सर को उसका मत लेने में कुछ क़ानूनी कठिनाई होती है, (पिछले निर्वाचन में एक मतदाता ने उसके अभिष्ट उम्मेदवार का नाम पूछे जाने पर, कहा था कि मैं महात्मा गांधी को मत देता हूँ; एक दूसरे ने कहा था कि मैं कांग्रेस को मत देता हूँ), पर ये उदाहरण अपवाद-स्वरूप हैं, और इनसे पूर्वोक्त बात में कुछ अन्तर नहीं आता।

कुछ लोगों का मत है कि बालिग़ मताधिकार म्युनिसिपैलटियों, ज़िला-बोर्डों और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों के निर्वाचन के लिए ही ठीक हो सकता है। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव के लिए, वे, विशेषतया भारतवर्ष जैसे बड़ी जन-संख्या वाले देश में, बालिग़ मताधिकार के अनुसार कार्य करने में बहुत कठिनाइयां होने के कारण, इसे ठीक नहीं समझते। उदाहरणवत् उनका कथन है कि भारतवर्ष के प्रस्तावित संघ शासन में, ब्रिटिश भारत के,* राज्य-परिषद के सदस्यों की संख्या १५० और संघीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की संख्या २५० निर्धारित की गयी है। ब्रिटिश भारत में बालिग़ों की संख्या बारह करोड़ से अधिक है। इस प्रकार संघीय व्यवस्थापक सभा में लगभग दस लाख और राज्य-परिषद में लगभग १६ लाख व्यक्तियों का एक-एक प्रतिनिधि है। यदि निर्वाचन प्रत्यक्ष हो और साथ ही बालिग़ मताधिकार की प्रणाली व्यवहृत हो तो संघीय व्यवस्थापक सभा के लिए लगभग पांच लाख और राज्य-परिषद के लिए लगभग आठ लाख निर्वाचकों को एक-एक प्रतिनिधि के निर्वाचन में भाग लेना होगा। क्या यह व्यवहारिक है? क्या एक उम्मेदवार का इतने निर्वाचकों के सम्पर्क में आना (व्यक्तिगत रूप से, एजन्टों द्वारा, अथवा समाचार पत्रों आदि द्वारा भी) सम्भव है?

*देशी राज्यों में प्रतिनिधियों के जनता द्वारा निर्वाचित होने की व्यवस्था न होने के कारण, यहां केवल ब्रिटिश भारत का उदाहरण लिया गया है। यदि वे निर्वाचित होने लगें तो समस्त भारतवर्ष के प्रतिनिधियों का विचार हो सकता है।

इसका उत्तर यह है कि व्यापक मताधिकार के व्यवहार में, उम्मेदवार को पृथक्-पृथक् निर्वाचकों के सम्पर्क में आने की आवश्यकता नहीं। मतदाताओं के लिए यह जान लेना पर्याप्त है कि किस-किस दल की ओर से उम्मेदवार खड़े किये गये हैं, कौन-कौन से राजनैतिक या नागरिक विषय विचारणीय हैं, तथा कैसी-कैसी समस्याएँ निकट भविष्य में उपस्थित होने वाली हैं, उनके सम्बन्ध में किस दल की क्या नीति है, और किस दल की नीति अधिकतम लाभकारी होगी। इस प्रकार आधुनिक निर्वाचनों में मतदाताओं को उम्मेदवार चुनने में व्यक्तियों की अपेक्षा दलों का विचार करना बेहतर है। इसमें उम्मेदवारों को भी सुभीता है; उन्हें अपने पक्ष में प्रचार करने के लिए, हज़ारों या लाखों मतदाताओं से अलग-अलग और बार-बार मिलने के वास्ते दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती, और न उनके एजन्टों को ही इस कार्य में अपरिमित द्रव्य और शक्ति लगानी पड़ती है। प्रत्येक दल की ओर से उसकी नीति स्पष्टतया घोषित हो जाने से मतदाताओं को आवश्यक बातें मालूम हो जाती हैं, और जिस दल की नीति को वे पसन्द करते है, उस दल के उम्मेदवार के पक्ष में अपना मत दे सकते हैं। इस प्रकार, भिन्न-भिन्न दलों की ओर से संगठित रूप से प्रचार कार्य बहुत मितव्ययिता-पूर्वक हो सकता है।

मतदाताओं की संख्या-वृद्धि से घबराने की कोई बात नहीं है। इस समय भी अनेक दशाओं में कई-कई ज़िलों का एक निर्वाचक-संघ है। बालिग़ मताधिकार की व्यवस्था होने पर निर्वाचन-क्षेत्र का

बढ़ना आवश्यक नहीं है, केवल मतदाताओं की संख्या बढ़ेगी। इसके लिये निर्वाचन-स्थानों (पोलिंग स्टेशनों) और कर्मचारियों की व्यवस्था अधिक करनी होगी। इसमें सरकारी ख़र्च भी कुछ बढ़ेगा। परन्तु लोक-सत्तात्मक भावों के प्रचार के लिए, और सर्वसाधारण को नागरिकता सम्बन्धी शिक्षा देने के वास्ते यह कार्य आवश्यक और उपयोगी ही है। अधिकारियों का यह तर्क निरर्थक है कि मतदाताओं की संख्या अधिक होजाने पर यहां मतों की गणना करने के लिए आवश्यकतानुसार योग्य और ईमानदार कार्यकर्ताओं की कमी रहेगी, तथा निर्वाचन-स्थानों का सुप्रबन्ध करने में असुविधा होगी। अस्तु, देश में राजनैतिक जागृति का कार्य यथेष्ट रूप से होने देने के लिए बालिग़ मताधिकार की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्मरण रहे कि बालिग़ मताधिकार का उपयोग साधारण निर्वाचक संघों में ही होता है, विशेष में नहीं। विशेष निर्वाचक संघों में निर्धारित पद या योग्यता वाले व्यक्ति ही मत दे सकते हैं।

अब हम यह बतलाते हैं कि मतदाता अपने मताधिकार का उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं।

निर्वाचक-सूची—प्रत्येक निर्वाचक-संघ के लिए एक-एक निर्वाचक-सूची साधारणतः चुनाव से तीन-चार मास पहले, तैयार की जाती है। इसके लिए ख़ास अफ़सर नियुक्त किये जाते हैं। वे अपने निर्वाचन-क्षेत्र के अन्दर ऐसे व्यक्तियों का नाम जानने का प्रयत्न करते हैं, जो उस निर्वाचक-संघ में निर्वाचक हो सकते हों, और

जिनमें इस अध्याय में पहले बतायी हुई अयोग्यताएं न हों।

म्युनिसिपैलटियों की निर्वाचक-सूची के सम्बन्ध में यह नियम है कि यदि एक म्युनिसिपैलटी निर्वाचन-कार्य के लिए 'वार्डों' या हल्कों में विभक्त हो तो प्रत्येक वार्ड की पृथक्-पृथक्, एक-एक निर्वाचक-सूची तैयार की जाती है। कोई आदमी अपना नाम एक से अधिक निर्वाचक-सूची में दर्ज नहीं करा सकता। जिन आदमियों का नाम किसी वार्ड की निर्वाचक-सूची में दर्ज होता है, वे ही उस वार्ड के उम्मेदवार के लिए अपना मत दे सकते हैं।

ज़िला-बोर्डों की निर्वाचक सूची के सम्बन्ध में यह नियम है कि कोई व्यक्ति एक ही ज़िले में, एक से अधिक निर्वाचक सूची में अपना नाम दर्ज नहीं करा सकता, चाहे उसे उस ज़िले में एक से अधिक सर्कलों या हल्कों में मत देने की योग्यताएं क्यों न प्राप्त हों। सर्कल या हल्के ज़िले की तहसीलों के वे भाग होते हैं, जिनमें निर्वाचन-कार्य के लिए, तहसील विभक्त की जाती हैं। प्रत्येक तहसील में उतने हल्के रखे जाते हैं, जितने सदस्य उस तहसील के साधारण निर्वाचक-संघ से निर्वाचित करने होते हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि यहां साधारण जनता अपने मताधिकार के महत्व को अच्छी तरह नहीं समझती। अधिकांश पढ़े लिखे व्यक्ति भी यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि उन्हें वर्तमान नियमों के अनुसार किसी व्यवस्थापक संस्था, अथवा म्युनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड के निर्वाचन में मताधिकार प्राप्त हो सकता है या नहीं। जो

व्यक्ति यह जानते भी है कि उन्हें निर्वाचन अधिकार प्राप्त हो सकता है, वे प्रथम वार निर्वाचक-सूची प्रकाशित होने पर निर्धारित समय के अन्दर यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि उनका नाम निर्वाचक-सूची में दर्ज कर लिया गया है, या नहीं। इस प्रकार बहुत-से व्यक्ति-निर्वाचक की योग्यता रखते हुए भी मताधिकार से वंचित रह जाते हैं, क्योंकि निर्वाचन के समय वे ही व्यक्ति मत दे सकते हैं, जिन का नाम निर्वाचक-सूची में दर्ज हो।

हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि यदि वे किसी व्यवस्थापक संस्था, म्युनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड के निर्वाचक हो सकते हों, और यदि उनका नाम प्रथम वार प्रकाशित होने वाली निर्वाचक-सूची में दर्ज न किया गया हो तो वे उस सूची के प्रकाशित होने से निर्धारित समय के अन्दर, दर्ख़ास्त देकर अपना नाम उस सूची में दर्ज करा लें।

संशोधित निर्वाचक सूची—प्रथम निर्वाचक-सूची, तैयार होने पर, प्रकाशित की जाती है। यह प्रायः अपूर्ण रहती है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम इस सूची में न दर्ज किया गया हो, जिसे निर्वाचन का अधिकार है, तो वह निर्धारित समय के अन्दर, दर्ख़ास्त देकर इसमें अपना नाम दर्ज करा सकता है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम उस सूची में दर्ज़ हो गया है, जिसे नियमों के अनुसार निर्वाचन-अधिकार प्राप्त न हो, या जिसमें इस अध्याय में पहले बतायी हुई अयोग्यताएं हों, तो ऐसे व्यक्ति का नाम निर्धारित समय के अन्दर दर्ख़ास्त दिये जाने पर निर्वाचक-सूची से निकाला जा सकता है। यह

दर्ख़ास्त वे ही व्यक्ति दे सकते हैं, जिनका नाम निर्वाचक-सूची में दर्ज हो।

निर्धारित समय के पश्चात् संशोधित निर्वाचक-सूची प्रकाशित की जाती है; जिन व्यक्तियों के नाम इसमें दर्ज होते हैं, वे ही निर्वाचन के समय अपना मत दे सकते हैं। निर्वाचक-सूची में प्रत्येक निर्वाचक का नम्बर, नाम, उसके पिता का नाम, और पता रहता है। निर्वाचकों को अपना नम्बर याद रखने से मत देने में सुभीता रहता है।

निर्वाचकों का कर्तव्य—निर्वाचक-सूची में मतदाता के नाम का समावेश हो जाने पर निर्वाचन कार्य सम्बन्धी अगली मंज़िल यह है कि निर्वाचक अपना मत देने के विषय में अपने उचित कर्तव्य का पालन करे। खेद है वर्तमान दशा में बहुत से निर्वाचक किसी सम्पन्न या प्रभावशाली व्यक्ति के लोभ अथवा लिहाज़ में आ जाते हैं, अथवा तुच्छ साम्प्रदायिक विचारों में फंस जाते हैं। इससे यह अपना मत योग्य सज्जनों को नहीं देते, और, अयोग्य उम्मेदवार प्रतिनिधि बन जाते हैं; नये-नये टैक्स लगते है, मन-माना ख़र्च होता है, और नागरिकों की उन्नति के यथेष्ट उपाय नहीं किये जाते। इस प्रकार, तमाम शासन-यंत्र बिगड़ जाता है। इसके वास्तविक दोषी वे निर्वाचक होते हैं, जिन्होंने अपने मताधिकार का दुरुपयोग किया है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि निर्वाचक अपना कर्तव्य भली भांति पालन करें। साथ ही, वे इस बात का भी निरीक्षण करते रहें कि कहीं मत बेचने या ख़रीदने का अनुचित कर्म, अथवा निर्वाचन-सम्बन्धी कोई अन्य

अनियमित कार्रवाई तो नहीं हो रही है। यदि ऐसा जान पड़े तो वे अपराधियों को न्यायालय से यथा-सम्भव समुचित दंड दिलावें।

मत कैसे आदमी को दिये जायँ?--निर्वाचकों को चहिए कि वे ऐसे सज्जन को ही मत देकर अपना प्रतिनिधि चुने, जो समुचित रूप से योग्य, अनुभवी तथा उदार और सुधारक हो; निस्वार्थ–सेवा, त्याग और कष्ट-सहन का उच्च आदर्श रखता हो। उसकी जाति–पांति का विचार करना ठीक नहीं। किसी की मीठी या लम्बी बातों का विश्वास न कर उसके पहले किये हुए कार्यों तथा व्यवहार और आचरण पर विचार करना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रहना आवश्यक है कि वह निर्भीक, और स्वतन्त्र प्रकृति का हो; खुशामदी, अधिकारियों के रौब में आने वाला, तथा उन्हें मान-पत्र देने आदि में सार्वजनिक द्रव्य लुटाने वाला न हो।

मतदाताओं को ध्यान रखना चाहिए कि जिस व्यक्ति को मत देकर वे अपना प्रतिनिधि बनाते हैं, वह जो कुछ व्यवस्थापक सभा में कहेगा, वह उनकी तरफ से कहा हुआ समझा जायगा। प्रत्येक नागरिक का एक-एक मत बहु-मूल्य है, वह किसी भी दशा में, अयोग्य व्यक्ति के पक्ष में नहीं दिया जाना चाहिए।*

मत देने में उपेक्षा न की जाय—कुछ नागरिक, निर्वाचन

* इस सम्बन्ध में कुछ विशेष बातों पर ब्यौरेवार विचार परिशिष्ट के लेख में प्रकट किये गये हैं।

के अवसर पर, मत देने के लिए जाते ही नहीं। यह उचित नहीं है। उनकी उपेक्षा से सम्भव है, योग्य उम्मेदवारों के वास्ते मतों में कमी रह जाय, और अयोग्य उम्मेदवार व्यवस्थापक सभा के सदस्य बन जायँ, जिसका दुष्परिणाम सब नागरिकों को अगले निर्वाचन तक—तीन, चार या अधिक वर्ष तक—भुगतना पड़े। अस्तु, मतदाता की हैसियत से नागरिकों का कर्तव्य है कि वे अपने मत का अवश्य उपयोग करें, मत देने में कभी उपेक्षा न करें। मत किस प्रकार दिये जाते हैं, यह आगे सातवें अध्याय में बतलाया जायगा।

छठा अध्याय

उम्मेदवार

"उत्तरदायी शासन की सफलता प्रतिनिधियों की योग्यता पर निर्भर है।"

—लेखक

उम्मेदवार किसे होना चाहिए ?—किसी व्यवस्थापक सभा अथवा म्युनिसिपैलटी या ज़िला-बोर्ड की मेम्बरी के लिए उम्मेदवार यथा-सम्भव नागरिक ही होने चाहिएँ; विदेशियों या अ-नागरिकों से, तथा पराधीन देश में सरकारी आदमियों से, प्रायः जनता की उतनी हितैषिता की आशा नहीं की जा सकती।

कुछ देशों में उम्मेदवार के पास कुछ सम्पत्ति होना भी आवश्यक समझा जाता है। इसके पक्ष में यह कहा जाता है कि निज की सम्पत्ति होने से उन्हें आर्थिक बातों का अधिक ज्ञान, तथा स्वार्थवश देश-रक्षा की अधिक चिन्ता, रहेगी। परन्तु इस कथन में कुछ सार नहीं। बहुधा अपने परिश्रम से जीवन-संग्राम की कठिनाइयों का सामना करने वालों में, धनिकों की अपेक्षा अनुभव और ज्ञान विशेष पाया जाता है। रही, देश-रक्षा आदि

की बात, सो धनिकों ने ही उसका पट्टा नहीं लिखा लिया है, साधारण श्रेणी के आदमी भी वैसे ही, तथा उनसे भी अधिक देश-प्रेमी हो सकते हैं।

उम्मेदवार काफ़ी उम्र के, बहुत गम्भीर, योग्य, निर्भीक, और अनुभवी होने के अतिरिक्त, ऐसे व्यक्ति होने चाहिएँ जो लोभ-रहित हों, और निस्स्वार्थ भाव से काम कर सकें। वास्तव में ऐसे उम्मेदवार अच्छे होते हैं जिनमें सांसारिक प्रतिस्पर्द्धा, या रुपये कमाने की वासना न हो, और जो सार्वजनिक कार्य में निश्चिन्तता-पूर्वक अपना समय दे सकें।

प्रायः व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों को, उन दिनों के लिए, जिनमें सभा का अधिवेशन होता है, काफ़ी भत्ता और सफ़र-ख़र्च दिया जाता है। कुछ दशाओं में सदस्यों के वास्ते ऐसा भत्ता निश्चय कर दिया जाता है, जो उन्हें प्रति मास मिलता रहता है, चाहे उस मास में सभा का, या उसकी किसी कमेटी का अधिवेशन हो या न हो।

इस विषय के प्रसिद्ध विचारक श्री० डाक्टर भगवानदास जी का मत है कि उम्मेदवार में निम्नलिखित योग्यता (गुण) होनी चाहिए :—

(क) समाज के इन चार मुख्य धर्मों (कार्यों) में से किसी एक का वह विशिष्ट अनुभवी हो, (१) ज्ञान विज्ञान, (२) शासन कार्य (रक्षा और प्रबन्ध-कर्म), (३) धन धान्योत्पादन अर्थात् कृषि, शिल्प, वाणिज्य-व्यापारादि, (४) शरीर श्रम (मजदूरी)।

(ख) सामाजिक जीवन के किसी विभाग में उसने अच्छा काम किया हो, और

सद्बुद्धिता [ईमानदारी नेकनीयती] और लोक-हितैषिता का सुयश कमाया हो।

[ग] उसके पास इतना अवकाश हो कि धर्म-सभा [व्यवस्थापक सभा] के काम को अच्छी तरह से कर सके और जीविका साधन अथवा धन संचयन के कार्यों से निवृत हो चुका हो, पर ऐसी निवृति अनिवार्य न हो।

धर्म-सभा [व्यवस्थापक सभा] के किसी सदस्य को कोई नकदी पुरस्कार या वेतन, सभा का काम करने के बदले में न दिया जाय, पर उस कार्य के लिए उसका जो कुछ विशेष व्यय हो, यथा सफर-खर्च, मकान का किराया आदि, वह सब उसको सरकारी खज़ाने से, राष्ट्र-कोष से दिया जाय, और विशेष सम्मान के चिह्न भी उस को दिये जायँ।

अब हम यह बतलाते हैं कि किसी व्यक्ति को उम्मेदवार होने के लिए क्या-क्या कार्य करने चाहिएँ।

उम्मेदवारी का प्रस्ताव पत्र—निर्वाचन के निर्धारित समय से पूर्व, सरकार एक विज्ञप्ति निकाल कर निश्चय करती है कि अमुक दिन तक कोई निर्वाचक किसी व्यक्ति के उम्मेदवार होने का प्रस्ताव एक निर्धारित फ़ार्म पर लिख कर दे सकता है। इस प्रस्ताव का एक अन्य निर्वाचक द्वारा समर्थन होना आवश्यक है। जो व्यक्ति उम्मेदवार होना चाहता है, उसकी लिखित अनुमति भी उसमें रहनी चाहिए। जिस फ़ार्म पर यह प्रस्ताव किया जाता है, उसे बड़ी सावधानी से भरा जाना चाहिए। उसमें कुछ ग़लती होने पर वह नामज़दगी-अफ़सर अर्थात् 'नामीनेशन आफ़िसर' द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है।

जो व्यक्ति उम्मेदवार होना चाहे, उसे चाहिए कि प्रस्ताव-पत्र का एक ही फ़ार्म भर कर सन्तुष्ट न रहे, वरन् भिन्न-भिन्न निर्वाचकों द्वारा भरे हुए कई फ़ार्म भिजवा दे, जिससे कुछ फ़ार्म अस्वीकृत होने पर भी कम-से-कम एक तो स्वीकृत हो सके। स्मरण रहे कि एक ही व्यक्ति कई निर्वाचक-संघों से भी उम्मेदवार हो सकता है।

उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्र, नामज़दगी-अफ़सर द्वारा, एक निर्धारित दिन लिये जाते हैं। जो प्रस्ताव-पत्र उस दिन नहीं दिये जाते, वे अस्वीकृत कर दिये जाते हैं। इसलिए उम्मेदवार होने वालों को ये प्रस्ताव-पत्र उस दिन भिजवा देने की पूरी व्यवस्था कर देनी चाहिए।

उम्मेदवार का एजंट—उम्मेदवार को यह लिखित सूचना देनी होती है कि वह किसे अपना निर्वाचन-एजंट नियत करता है, या, एजंट के काम को वह स्वयं ही करना स्वीकार करता है।

एजंट अच्छा योग्य चाहिए। कोई ऐसा व्यक्ति एजंट नहीं बनाया जाना चहिए, जो किसी निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो, या जिसने कभी उम्मेदवार होकर निर्वाचन-व्यय का झूठा हिसाब दिया हो, अथवा हिसाब ही न दिया हो।

उम्मेदवार की ज़मानत—जो व्यक्ति किसी निर्वाचक-संघ से खड़ा होना चाहता है, उसे कुछ रुपये ज़मानत के रूप में,

निर्धारित समय के अन्दर जमा करने होते हैं।* यदि वह ऐसा न करे तो उसके उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्र पर कुछ विचार नहीं किया जाता, वह अस्वीकृत कर दिया जाता है।

प्रान्तीय सरकार उम्मेदवारी के प्रस्ताव-पत्रों की जांच करने के लिए एक दिन निश्चय करती है, और इस दिन की सूचना उम्मेदवार होने वाले व्यक्तियों को दी जाती है। यदि कोई व्यक्ति चाहे तो इस जाँच के दिन के बाद निर्धारित समय तक अपनी उम्मेदवारी का प्रस्ताव-पत्र वापिस ले सकता है। इस दशा में उसे ज़मानत के रुपये वापिस मिल जाते हैं।

उम्मेदवार होने की घोषणा—एक निर्धारित दिन, उम्मेदवार होने वाले व्यक्तियों की उपस्थिति में, उनके प्रस्ताव-पत्रों की जाँच, नामज़दगी-अफ़सर द्वारा, की जाती है। जिन प्रस्ताव-पत्रों में कुछ ग़लतियां पायी जाती हैं; वे अस्वीकृत कर दिये जाते हैं, और जिन व्यक्तियों के प्रस्ताव-पत्र ठीक पाये जाते हैं, उनके उम्मेदवार होने की घोषणा कर दी जाती है।.

यदि किसी निर्वाचक-संघ के उम्मेदवारों की संख्या उतनी ही हो जितने उस संघ की ओर से प्रतिनिधि हो सकते हैं, या जितने प्रतिनिधियों के लिए जगह ख़ाली हो, तो वे सब उम्मेदवार उस निर्वाचक-संघ के निर्वाचित सदस्य, अर्थात् प्रतिनिधि समझे जाते हैं; और,

*जो उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते, उनके लिए यदि (निर्वाचकों) के निर्धारित मतों से कम प्राप्त होते हैं तो उनकी ज़मानत ज़ब्त हो जाती है।

उस निर्वाचक-संघ के निर्वाचकों को अपना मत देने की आवश्यकता नहीं रहती।

यदि उम्मेदवारों की संख्या उस निर्वाचक-संघ के अभीष्ट प्रतिनिधियों की संख्या से अधिक हो, तो प्रान्तीय सरकार से निर्धारित किये हुए दिन, निर्वाचन होता है।

अब हम यह बतलाते हैं कि उम्मेदवार हो जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चुनाव में सफलता प्राप्ति के लिए, उम्मेदवार होने के समय से निर्वाचन के समय तक, आधुनिक पद्धति के अनुसार, क्या-क्या कार्य करने चाहिएँ।

उम्मेदवार के एजंट, और ख़र्च का हिसाब—यदि उम्मेदवार ने उस निर्वाचक-संघ की, जहाँ से वह उम्मेदवार हुआ है, निर्वाचक-सूची पहले प्राप्त नहीं की है, तो उसे वह शीघ्र प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसे विश्वास-पात्र और योग्य व्यक्तियों को अपने एजंट नियत करने चाहिएँ। इन कर्मचारियों की संख्या निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा, और निर्वाचन-कार्य की गुरुता पर निर्भर है। उम्मेदवार को चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों को इस बात की ताक़ीद कर दे कि वे उसकी लिखित स्वीकृति के बिना कुछ ख़र्च न करें, और जो कुछ ख़र्च करें उसका पूरा-पूरा, रसीद सहित, हिसाब रखें, तथा उसे वे बराबर उस (उम्मेदवार) के पास भेजते रहें, और कभी कोई ऐसा ख़र्च न करें जो निर्वाचन-कार्य के लिए ग़ैर-कानूनी माना जाता है।

जिस दिन से उम्मेदवार निर्वाचन के लिए कार्य आरम्भ करे, उसी दिन से उसे निर्वाचन सम्बन्धी व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखना चाहिए। ख़र्च करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखा जाय कि कोई ख़र्च अनुचित तो नहीं हो रहा है।

ग़ैर-क़ानूनी ख़र्च--निर्वाचन कार्य के लिए, निम्न लिखित कार्यों का ख़र्च ग़ैर-क़ानूनी माना जाता है।

१—मत प्राप्त करने के लिए, या अपने प्रतियोगी किसी उम्मेदवार को मत न देने के लिए, अथवा मत देने में सर्वथा उदासीन रहने के लिए रिशवत देना, या जल-पान या भोजन आदि कराना, या दावत देना।

२—ऐसे कमरे का उपयोग करना, या किराये पर लेना, जहाँ शराब बेची जाती हो।

३—किसी प्रतियोगी उम्मेदवार को अपना नाम उम्मेदवारी से वापिस लेने के लिए रिशवत देना।

उम्मेदवार का सूचना-पत्र--उम्मेदवार को चाहिए कि वह एक सूचना-पत्र प्रकाशित कराये, जिससे यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो कि यदि वह (उम्मेदवार) निर्वाचित हो जाय तो वह प्रतिनिधि की हैसियत से क्या-क्या कार्य करेगा। यह सूचना-पत्र बहुत सावधानी से तैयार किया जाना चाहिए। यदि उम्मेदवार किसी दल (पार्टी) की ओर से खड़ा हुआ हो तो उसे उस दल की नीति के अनुसार ही अपना सूचना-पत्र प्रकाशित कराना

चाहिए, और इसमें उस दल द्वारा प्रकाशित सूचना-पत्र से आवश्यक सहायता लेनी चाहिए। यदि उम्मेदवार किसी दल विशेष की ओर से खड़ा न होकर स्वतंत्र रूप से खड़ा हुआ है तो उसे अपने सूचना-पत्र में वे ही बातें लिखनी चाहिएँ, जिन्हें करने में वह भली भांति समर्थ हो। सूचना-पत्र में लिखी हुई बातें प्रतिज्ञा-स्वरूप होती हैं, और किसी आदमी का ऐसी प्रतिज्ञा करना अनुचित और अनैतिक है, जिसे पूर्ण करने के विषय में वह अपनी असमर्थता को पहले से ही भली भांति जानता, या अनुमान कर सकता हो।

यदि आवश्यक हो तो प्रथम सूचना-पत्र के बाद, उम्मेदवार और भी सूचना-पत्र प्रकाशित करायें। यदि किसी अन्य उम्मेदवार ने उस पर, अथवा उसके दल की नीति पर, कोई व्यर्थ आक्षेप किया हो, तो उसका उत्तर दे देना चाहिए। परन्तु उम्मेदवार के सूचना-पत्रों की भाषा और भाव सदैव सौजन्य-पूर्ण रहने चाहिए, उनमें शिष्टाचार का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए; उम्मेदवार को व्यक्तिगत 'तू-तू मैं-मैं' कदापि न करनी चाहिए। उसे अपने प्रत्येक सूचना-पत्र का अपने निर्वाचन-क्षेत्र में यथेष्ट प्रचार करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

उम्मेदवार के कार्य—आधुनिक पद्धति के अनुसार, उम्मेदवार को यह भी चाहिए कि जहाँ तक हो सके वह स्वयं निर्वाचकों के पास जाये, और उनके अधिक-से-अधिक मत प्राप्त करने का

प्रयत्न करे। इस कार्य में वह अपने एजंटों से सहायता ले सकता है। उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र में सभाएँ करनी चाहिएँ, और वहां योग्य व्यक्तियों द्वारा व्याख्यान दिला कर, या स्वयं व्याख्यान देकर निर्वाचकों का मत प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।* यदि हो सके तो उसे सभा में आये हुए व्यक्तियों को प्रश्न पूछने का अवसर देना चाहिए। इन प्रश्नों का उत्तर वह बड़ी सावधानी से देवे। उम्मेदवार को समाचार-पत्रों में समयोचित लेख भेज कर अथवा भिजवा कर भी अपने कार्य में सहायता लेनी चाहिए।

निर्वाचन के दिन उम्मेदवार को विशेष कार्य करना होता है। उसे चाहिए कि उस दिन मत देने के सब स्थानों अर्थात् 'पोलिंग स्टेशनों' पर अपने कर्मचारी भेज दे, जो मतदाताओं को उनका नम्बर बताएँ, तथा उन्हें मत देने के स्थान पर ले जायँ। उम्मेदवार कुछ-कुछ समय सभी पोलिंग स्टेशनों पर रहने का प्रयत्न करे। उसका एक-एक एजंट तो प्रत्येक मत लेने वाले अफ़सर के पास उपस्थित रहे, और, मत देने के लिए, आने वाले निर्वाचकों की पहिचान या शनाख़्त में सहायता दे।

निदान, आधुनिक पद्धति में, यह आवश्यक है कि उम्मेदवार अपने पक्ष में, प्रचलित क़ानून का ध्यान रखते हुए, निर्वाचकों के अधिक-से-अधिक मत संग्रह करे। सम्भव है, वह अपने प्रतियोगी उम्मेदवार से। केवल एक ही मत की कमी के कारण,

*इस सम्बन्ध में विशेष विचार आगे इसी अध्याय में किया गया है।

हार जाय। इसलिए ज़रूरी है कि कोई उम्मेदवार यथा-शक्ति अपने एक भी निर्वाचक की ओर उदासीन न रहे।

आन्दोलन की मर्यादा—परन्तु यह निर्वाचन-आन्दोलन एक मर्यादा के अन्दर ही रहना उचित है। आज कल कुछ उम्मेदवार अपने 'वार्ड' या निवास-स्थान, अथवा जाति या धर्म के नाम पर निर्वाचकों से अपील करते हैं, या अपने प्रभाव या शक्ति का बखान करते हैं। उदाहरणवत् एक उम्मेदवार अपनी जाति के मतदाताओं से कहता है, "आशा है कि तुम अपने जाति-प्रेम का परिचय दोगे, और ग़ैर आदमियों से अपने जाति-भाई को हर दशा में अच्छा समझोगे"। दूसरा, अपने सहधर्मियों से निवेदन करता है, "हमारा तुम्हारा इष्टदेव एक ही है, वह (दूसरा प्रतियोगी उम्मेदवार) तो नास्तिक या विधर्मी है। उसके पक्ष में मत देना महा-पाप है।" कोई-कोई ज़मींदार उम्मेदवार अपने किसानों से कहता है "खबरदार! तुम लोगों में से किसी ने भी दूसरे उम्मेदवार को मत दिया तो देख लिये जाओगे। मुझसे तो हमेशा ही काम है न?।" कुछ उम्मेदवार, निर्वाचकों को तरह-तरह की सौगन्ध दिलाकर अनुरोध करते हैं, कि आप मेरे ही पक्ष में मत दीजिए। कोई-कोई उम्मेदवार किसी मतदाता से इस बात का बचन लेना या प्रतिज्ञा कराना चाहता है कि वह उसी (उम्मेदवार) के लिए मत दे; और अगर मतदाता इस बात का विश्वास नहीं दिलाना

चाहता या नहीं दिला सकता, तो उम्मेदवार रुष्ट हो जाता है। उम्मेदवार का, अपने पक्ष की बातें कहना, या अपनी नीति की श्रेष्ठता समझाना तो ठीक है, परन्तु यदि कोई मतदाता उससे सन्तुष्ट न हो अथवा यह पहले से प्रकट न करना चाहे कि वह किस उम्मेदवार को अच्छा समझता है, तो इसमें किसी उम्मेदवार के नाराज़ होने की कुछ बात नहीं है।

कुछ उम्मेदवार मतदाताओं को विविध प्रकार के प्रलोभन देते हैं, या उन पर मनमाना प्रभाव डालते हैं। अनुचित प्रभाव, क़ानून से वर्जित है; तथापि चालाक उम्मेदवार (तथा उनके चलते-पुर्ज़े एजंट या सब-एजंट) इससे परहेज़ नहीं करते। बहुधा वे निर्भीकता-पूर्वक इन क्षुद्र विचारों की सहायता से अपना काम निकालते रहते हैं, और, किसी व्यक्ति को उनके विरुद्ध बोलने का साहस नहीं होता। यह सब बातें त्याज्य हैं। उम्मेदवारों को कोई काम ऐसा न करना चाहिए, जिससे जनता में संकुचित भावों का प्रचार हो, चाहे इससे उनकी निर्वाचन में पराजय की ही सम्भावना क्यों न हो।

भिन्न-भिन्न दलों की चालें—परन्तु खेद है कि न केवल उम्मेदवार व्यक्तिगत रूप से अनेक अनुचित कार्य करते हैं, वरन् प्रायः भिन्न-भिन्न राजनैतिक दल (तथा उनके समाचार-पत्र) भी निर्वाचन के समय, निर्वाचकों में तरह-तरह की अफवाहें उड़ा कर, अथवा उन्हें विविध प्रकार से धोखा देकर अपने-अपने उम्मेदवारों की विजय का प्रयत्न करते हैं। पाश्चात्य देश इस

कार्य में बहुत बढ़े-चढ़े हैं, उनके विविध दल ऐसी बातों में बड़े प्रवीण हैं। उनका अनुकरण भारतवर्ष में भी होने लग गया है। उम्मेदवार खड़े करने वाले भिन्न-भिन्न दलों की घोषणाओं और वक्तव्यों की बातों में अत्युक्ति ही नहीं, असत्य का भी बहुत अंश होता है, परन्तु संग्राम में विजय पाने की इच्छा रखने वाले पक्ष प्राय: इस बात का गम्भीरता से विचार नहीं करते। प्रत्येक दल दूसरे को नीचा दिखाना और उसे जनता की दृष्टि में अपमानित करना अपना कर्तव्य समझता है। इस प्रकार वर्तमान निर्वाचन पद्धति में उम्मेदवारों अथवा भिन्न-भिन्न दलों का कितना नैतिक पतन हो जाता है, यह विचारणीय है।

हमारा आदर्श—व्यवस्थापक सभाओं तथा म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों के लिए जनता का प्रतिनिधि होना, देश-सेवा के विविध साधनों में से एक है। * जो व्यक्ति इस साधन की प्राप्ति में अनुचित उपायों से—चाहे वे उपाय ग़ैर-क़ानूनी न समझे जायँ—काम लेते हैं, उनकी सेवा का वास्तविक महत्व बहुत-कुछ नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति झूठ-सच बोलकर, और तरह-तरह की बातें बनाकर, प्रतिनिधि बनना चाहते हैं, तथा अपने

* देश की आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि अनेक प्रकार की उन्नति करने के बहुत से मार्ग हैं। व्यवस्थापक संस्थाओं तथा म्यूनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों से बाहर रह कर भी बहुत सेवा की जा सकती है, और, प्रत्येक देश में अनेक सज्जनों द्वारा की जाती है।

लिए मत संग्रह करने के वास्ते स्वयं अपने गुणों की विज्ञप्ति करते हैं, और अपने एजंट, सब-एजंट या मित्रादि से अपनी प्रशंसा कराने में संकोच नहीं करते, उनकी गिनती आज-कल चाहे जितने बड़े आदमियों में की जाय, प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार उनकी सेवा सात्विक और निष्काम नहीं कहीं जा सकती।

भारतीय आदर्श को ध्यान में रख कर यही व्यवस्था उत्तम है कि कोई व्यक्ति न तो स्वयं किसी संस्था का सदस्य होने के लिए उम्मेदवार बने, और न अपने पक्ष में मत- याचना करने के लिए मतदाताओं के दरवाज़े खटखटाता फिरे।* यदि निर्वाचक उससे उम्मेदवार होने की प्रार्थना करें तो वह जनता को इस बात में अपना सहमत होना सूचित करदे कि यदि उसका निर्वाचन हो जायगा तो वह इस कार्य-भार को ग्रहण कर लेगा।

यदि इस बात को आवश्यक उप-नियमों सहित क़ानून का स्वरूप मिल जाय, और इसके अनुसार कार्य होने लगे तो निर्वाचन-आन्दोलन बहुत सुधर जाय, और इसकी बहुत सी खराबियाँ हट जायँ।

* श्री० डाक्टर भगवानदास जी का विचार है कि साक्षात अथवा परोक्ष रूप से, 'कन्वेसिंग' करना या वोट मांगना उम्मेदवार की अयोग्यता का हेतु समझा जाय, पर निर्देशकों (नामज़द करने वालों) को अधिकार हो कि निर्दिष्ट (उम्मेदवार) के गुणों की घोषणा कर दें।

सातवाँ अध्याय

मत देना

इस अध्याय में हम यह बतलायेंगे कि निर्वाचन में साधारणतया मत ('वोट') किस प्रकार दिये जाते हैं। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मत गुप्त रूप से दिये जाने की क्या आवश्यकता है।

मतों का गुप्त रहना—मताधिकार से यथेष्ट लाभ तभी हो सकता है, जब कि मतदाताओं को अपना मत देने में, अर्थात् प्रतिनिधियों के निर्वाचन में पूरी स्वतन्त्रता हो। जिस व्यक्ति को वे प्रतिनिधि बनने के लिए अधिक से अधिक उपयुक्त समझें, उसे ही मत दे सकें, उन पर किसी का अनुचित दबाव न पड़े, और न उन्हें कोई प्रलोभन आदि दिया जाय। इस विचार से निर्वाचन के सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाये जाते हैं।

प्राय: मनुष्यों में एक बड़ी कमज़ोरी होती है, वे अपना मत खुले-आम स्पष्ट रूप से नहीं दे सकते। यदि किसी व्यवस्थापक सभा का सदस्य बनने के लिए तीन-चार उम्मेदवार हों, तो मतदाता के सामने यह समस्या होती है कि उनमें से किसके लिए वह अपना मत दे। बहुधा जब वह जान लेता है कि अमुक

उम्मेदवार सदस्य बनने के लिए सब से अधिक योग्य है, तो भी यदि कोई दूसरा उम्मेदवार उसका मित्र या रिश्तेदार है, अथवा उसकी जाति या धर्म का है, या विशेष प्रतिष्ठा वाला है तो उसके मन में उसका लिहाज़ हो जाता है। और, अगर सबके सामने मत देना पड़े तो सम्भव है कि मतदाता, अपनी वास्तविक सम्मति के विरुद्ध, इस दूसरे आदमी के लिए मत देदे। इस वास्ते मत गुप्त रूप से देने की प्रथा चलायी गयी है।

मत देने की विधि—आजकल निर्वाचन प्रायः इस तरह होता है। पहले सरकार द्वारा निर्वाचन-स्थान, तिथि और समय निश्चित किया जाता है, और, प्रत्येक निर्वाचन-स्थान के लिए एक या अधिक निर्वाचन-अफ़सर की नियुक्ति की जाती है। निर्धारित समय पर, निर्धारित स्थान में मत लेने का कार्य आरम्भ होता है।

जब निर्वाचक, मत देने के स्थान पर जाता है, उसका नाम, निर्वाचक नम्बर, और पता पूछा जाता है। आवश्यकता होने पर उम्मेदवार या उसके एजंट को निर्वाचन-अफ़सर या उसके कर्मचारी के सामने, निर्वाचक की शनाख़्त करनी होती है। शिक्षित निर्वाचक को अपने हस्ताक्षर करने, और अशिक्षित को अपने अँगूठे का निशान लगाने, पर एक पर्चा दिया जाता है, जिसे निर्वाचन-पत्र, मत-पत्र या 'बेलट पेपर' कहते हैं। इस पर्चे को देने से पहले, उम्मेदवार या उसके एजंट के कहने पर, किसी मतदाता

से निर्वाचन-अफ़सर यह प्रश्न कर सकता है, 'क्या आप वही व्यक्ति हैं जिनका नाम निर्वाचक-सूची में दर्ज है' या 'क्या आप आज इससे पहले मत दे गये हैं। [यदि मतदाता इन प्रश्नों का उत्तर न दे, अथवा पहले प्रश्न का उत्तर 'नहीं' या दूसरे का 'हां' दे, तो उसे निर्वाचन का पर्चा नहीं दिया जायगा।] पर्चा देने के बाद निर्वाचन-अफ़सर निर्वाचक को यह बता देता है कि वह अधिक से अधिक कितने मत दे सकता है।* पर्चा लेकर शिक्षित निर्वाचक एक नियत एकान्त स्थान में जाकर उस पर्चे पर अपने अभीष्ट उम्मेदवार के नाम के सामने निर्दिष्ट चिह्न (+ या ×) कर देता है, और उस पर्चे को मोड़कर एक सन्दूक़ में डाल देता है, जो वहां इस काम के लिए विशेष रूप से तैयार करा के, रखा जाता है। यदि निर्वाचक अशिक्षित या बीमार हो, अथवा बेकार हाथ वाला हो तो निर्वाचन-अफ़सर उम्मेदवारों तथा उनके एजंटों की उपस्थिति में, उसके बताये हुए नाम के सामने निशान लगाकर पर्चे को उस सन्दूक में डलवा देता है। निर्धारित समय, सन्दूक पर मोहर लगाकर

* 'एक उम्मेदवार, एक मत'—प्रणाली में, एक निर्वाचक एक सदस्य के लिए एक मत दे सकता है। उदाहरणार्थ यदि किसी निर्वाचक-संघ से तीन प्रतिनिधि चुने जाते है, और कल्पना करो कि वहां से पांच उम्मेदवार खड़े होते हैं, तो एक निर्वाचक इन पांचों व्यक्तियों में से किन्हीं तीन सज्जनों के लिए एक-एक मत दे सकता है। वह चाहे तो तीन से भी कम दो या एक को ही अपना एक-एक मत दे, परन्तु वह उम्मेदवारों में से तीन से अधिक को मत नहीं दे सकता।

उसे बन्द कर दिया जाता है। पीछे यह सन्दूक निर्वाचन-अध्यक्ष, उसके सहायकों, तथा ऐसे उम्मेदवारों या उनके एजंटों के सामने खोला जाता है, जो वहां उपस्थित हों; और, पर्चों को छांट कर प्रत्येक उम्मेदवार को मिले हुए मत गिने जाते हैं।

ख़ारिज़ पर्चे—जब मतों की गिनती की जाती है, तो निम्न-लिखित पर्चे ख़ारिज कर दिये जाते हैं; उनके मत नहीं गिने जाते :—

१—जिन पर सरकारी चिह्न न हो।

२—जिन पर उतने उम्मेदवारों से अधिक के नाम के सामने निशान लगाया गया हो, जितने प्रतिनिधियों की आवश्यकता हो,

३—जिन पर्चों पर कोई निशान न लगाया गया हो,

४—जिनसे यह स्पष्ट न हो कि निर्वाचक किस उम्मेदवार को या किन उम्मेदवारों को, मत देना चाहता था; और,

५—जिन पर कोई ऐसा संकेत हो, जिससे मत देने वाले का नाम आदि मालूम हो सके।

निर्वाचकों को चाहिए कि अपना पर्चा ऐसी सावधानी से भरें कि वह ख़ारिज न हो।

रंगीन सन्दूकों का उपयोग—पूर्वोक्त पद्धति से, पढ़े-लिखे निर्वाचकों का मत तो गुप्त रहता है, परन्तु अशिक्षित निर्वाचकों का मत सबको मालूम हो जाता है। इस दोष को दूर करने के

लिए कहीं-कहीं रंगीन सन्दूकों का भी उपयोग किया जाता है। प्रत्येक उम्मेदवार के लिए एक-एक रंग नियत कर दिया जाता है और उस रंग के सन्दूक़ पर उसका नाम भी लिख दिया जाता है, (या उसका फ़ोटो चिपका दिया जाता है)। जब निर्वाचन-अफ़सर किसी निर्वाचक को मत-पत्र देता है तो वह उसे यह समझा देता है कि किस उम्मेदवार का क्या रंग है, और उसे कह देता है कि जिस उम्मेदवार के लिये उसे मत देना हो, उसके रंग वाले सन्दूक़ में वह अपना मत-पत्र डाल दे। निर्वाचक अपनी इच्छानुसार मत-पत्र अभिष्ट सन्दूक़ में डाल देता है। निर्धारित समय के पश्चात् प्रत्येक सन्दूक़ में डाले हुए मत-पत्रों की संख्या गिन ली जाती है।

इस प्रणाली से यह लाभ है कि अशिक्षित निर्वाचक अपना मत निस्संकोच, बिना किसी के जाने हुए, दे सकते हैं; उनका भी मत गुप्त रहता है।* यदि किसी निर्वाचक ने अनुचित दबाव में पड़कर किसी विशेष उम्मेदवार को मत देने की प्रतिज्ञा कर ली हो तो वह उससे सहज ही मुक्त हो सकता है।

इस प्रणाली से दूसरा लाभ यह भी है कि इससे 'एकत्रित मत पद्धति' के अनुसार (जिसका वर्णन आगे आठवें अध्याय में किया

*कभी-कभी उम्मेदवारों के एजन्ट इन सन्दूक़ों के पास उपस्थित रहते हैं, इससे मत गुप्त नहीं रहता, वह एजन्टों को विदित हो जाता है। ऐसा होने देना ठीक नहीं, अतः एजन्ट को वहां न रहने देना चाहिए।

जायगा), मत-पत्रों में से चाहे जितने मत-पत्र चाहे जिस सन्दूक में डाल सकता है।

आधुनिक निर्वाचन पद्धति में भिन्न-भिन्न उम्मेदवारों के पक्ष में दिये हुए मतों के गिनने में बड़ी सुविधा रहती है। जिन उम्मेदवारों के लिए अधिक मत आते हैं, उनके निर्वाचित हो जाने की विज्ञप्ति की जाती है।

मत देने की दूसरी विधि; 'लिस्ट सिस्टम'—कुछ देशों में निर्वाचन-कार्य के लिए मत देने की एक दूसरी विधि प्रचलित है; सम्भव है, भारतवर्ष में भी, विशेषतया स्थानीय संस्थाओं अर्थात् म्युनिसिपैलटियों आदि के सदस्यों के चुनाव के लिए इसका उपयोग बढ़ने लगे। अतः इसका उल्लेख करना आवश्यक है। इस विधि के अनुसार, निर्वाचक अपना मत किसी व्यक्ति को नहीं देते, वरन् भिन्न-भिन्न पार्टियों या दलों द्वारा तैयार की हुई सूचियों अर्थात् 'लिस्टों' को ही देते हैं। उदाहरणार्थ कल्पना करो, किसी नगर की म्युनिसिपैलटी का चुनाव होने वाला है और वहां तीन दल मुख्य हैं, उग्र दल, कांग्रेस-दल, और स्वतन्त्र-दल। अब यदि निर्वाचित होने वाले सदस्यों की निर्धारित संख्या बारह है तो प्रत्येक दल अपने बारह-बारह उम्मेदवारों की एक सूची या फेहरिस्त (लिस्ट) तैयार करता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सूची के नाम अन्य सूचियों के नामों से सर्वथा भिन्न हों, कुछ उम्मेदवारों के नाम दो या अधिक सूचियों

में होना सर्वथा सम्भव है। अस्तु, मतदाताओं को तीनों सूचियों के नाम बता दिये जाते हैं। प्रत्येक मतदाता को अधिकार है कि वह चाहे जिस सूची के पक्ष में अपना मत दे। जिस दल की तैयार की हुई सूची के पक्ष में सब से अधिक मत आते हैं, उसी दल की विजय होती है। उस दल के सब उम्मेदवारों के निर्वाचित होने की घोषणा की जाती है।

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि मतदाता, व्यक्तिगत उम्मेदवारों की अपेक्षा, उनकी पार्टी का अधिक ध्यान रखते हैं। इस प्रकार, विभिन्न दलों के सम्यग् संगठन में सहायता मिलती है।

आठवाँ अध्याय

मत-गणना प्रणाली

संसार में आज हमें तरह-तरह की प्रतिनिधि-निर्वाचन-प्रणालियां दीख रही हैं। फिर भी सर्वोत्तम प्रणाली की खोज जारी हैं। प्रचलित प्रणालियों में कौनसी सब से अच्छी है, यह कहना सहज नहीं है। सुविधा असुविधा देखकर विविध देशों ने भिन्न-भिन्न प्रणालियों को अपना लिया है, पर सदा के लिए नहीं।

—प्रो० बलदेव नारायण

भिन्न-भिन्न प्रणालियां—भिन्न-भिन्न देशों में प्रायः यह रीति है कि मतदाता अपने में से ही किसी व्यक्ति को मत देकर अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। मत-गणना की दो प्रणालियां हैं :—

(१) एकाकी मत प्रणाली

(२) अनेक मत प्रणाली

दूसरी अर्थात् 'अनेक मत प्रणाली' के बहुत-से भेद उपभेद हैं; कहा जाता है कि योरप में लगभग तीन सौ निर्वाचन प्रणालियों का अनुभव किया जा चुका है। हम इसके मुख्य मुख्य भेदों का ही विचार करेंगे, जो विशेषतया यहां प्रचलित या उपयोगी हैं। पहले एकाकी मत प्रणाली का विचार करें।

एकाकी मत प्रणाली--यह बहुत सरल है। जिस भू-भाग (प्रान्त, ज़िले या नगर) के प्रतिनिधि चुनने होते हैं, उसके मत-दाताओं का विचार करके उसे सुविधानुसार कुछ निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त कर दिया जाता है, जिनमें से प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि लिया जाय। यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही उम्मेदवार हो तो वह प्रतिनिधि चुन लिया जाता है। उसके लिए मतदाताओं को मत देने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जब कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से कई उम्मेदवार हों—और प्रायः ऐसा ही होता है—तो यह मालूम करने की आवश्यकता होती है कि किस उम्मेदवार के पक्ष में निर्वाचकों का सबसे अधिक मत है। इसके लिए मत लिये जाते हैं। एकाकी मत प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता का एक-एक ही मत होता है। जिस उम्मेदवार के पक्ष में सबसे अधिक मत आते हैं, वह प्रतिनिधि घोषित किया जाता है; शेष सब उम्मेदवार असफल या पराजित माने जाते हैं।

इस प्रणाली की आलोचना--यह प्रणाली जैसी सरल है, वैसी ही सदोष है। विचार कीजिए; जब एक ही प्रतिनिधि चुना जाता है, तब जिस-जिस मतदाता ने उसे मत दिया, उस-उस मतदाता का ही प्रतिनिधित्व होता है, शेष मत-दाता अपने प्रतिनिधित्व से वंचित रहते हैं। वे व्यवस्थापक सभा के संगठन और निर्णयों के प्रति उदासीन होते हैं। अनेक

दशाओं में ऐसे मतदाताओं की संख्या काफी बड़ी होती है। यह सर्वथा सम्भव है कि विजयी उम्मेदवार नाम-मात्र के ही बहुमत से जीत जाय। उदाहरणवत, एक निर्वाचन-क्षेत्र से क को ५०० मत मिलें, और ख को ५०२। इस दशा में ख उम्मेदवार प्रतिनिधि घोषित किया जायगा, यद्यपि उसके पक्ष में अपने प्रतिद्वन्दी की अपेक्षा केवल दो ही मत अधिक आये हैं। अस्तु, इस का फल यह होता है कि १००२ मतदाताओं में से ५०० अर्थात् लगभग आधे मतदाताओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता। ऐसी दशा में कोई प्रतिनिधि अपने आपको बहुजन समाज का प्रतिनिधि कहने का दावा करे तो उसमें क्या सार है! *

इस प्रणाली को दोष उतना ही अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है, जितने अधिक उम्मेदवार निर्वाचन में खड़े होते हैं। कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से चार उम्मेदवार खड़े हैं (उस क्षेत्र से

इस प्रणाली के व्यवहार में, कभी-कभी यह बात भी देखने में आती है कि जब भिन्न-भिन्न उम्मेदवारों के वास्ते मत लिये जाने वाले होते हैं तो जिस उम्मेदवार के वास्ते सबसे प्रथम मत लिये जाते हैं, उसे लाभ रहता है। बहुत से मतदाता उसी के पक्ष में मत दे देते हैं। उन्हें इस बात का विचार नहीं रहता कि उनका एक ही मत है, और जब वह खर्च हो जायगा तो उनके पास दूसरे उम्मेदवार को देने के वास्ते कुछ न रहेगा। सार्वजनिक संस्थाओं में जब किसी पद के लिए तीन-चार उम्मेदवार होते हैं, तो प्रत्येक उम्मेदवार के समर्थक यही प्रयत्न किया करते हैं कि सबसे प्रथम उनकी पसन्द के उम्मेदवार के वास्ते मत लिये जायँ।

केवल एक ही प्रतिनिधि लिया जाना है), और इन उम्मेदवारों को मत इस प्रकार प्राप्त होते हैं :—

क	को	५००
ख	,,	४५०
ग	,,	४२५
घ	,,	४००
योग		१७७५

इस दशा में, क्योंकि क को सब से अधिक मत प्राप्त हुए हैं, वह विजयी घोषित किया जाता है, और प्रतिनिधि सभा का सदस्य बन जाता है। परन्तु उपर्युक्त हिसाब से स्पष्ट है कि वह १७७५ मतदाताओं में से केवल ५०० का, अर्थात् एक-तिहाई से भी कम मतदाताओं का प्रतिनिधि है। शेष दो-तिहाई से अधिक मतदाताओं का व्यवस्थापक सभा में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। पाँच सौ का मत प्रगट करने वाला व्यक्ति अन्य १२७५ का भी दृष्टि-कोण सूचित करने वाला मान लिया जाता है। यह कैसा प्रतिनिधित्व है, और कैसा प्रजातन्त्र है !

यह ठीक है कि आजकल शासन-कार्य में बहुमत से काम होता है, तथा शासन-सूत्र उस दल के हाथ में रहता है, जिसका प्रतिनिधि-सभा में बहुमत हो। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रतिनिधि-सभा में केवल किसी दल विशेष के ही प्रतिनिधि रहें, और अन्य सब दलों

का उसका कोई प्रतिनिधित्व न हो।* इससे तो जनता को मताधिकार देना बहुत-कुछ व्यर्थ हो जाता है। मताधिकार देकर प्रजा-तन्त्र की दुहाई दी जाती है, परन्तु व्यवहार में मताधिकार का लाभ बहुत कम होने देकर निरंकुशता की ओर बढ़ा जाता है।

यह कहा जा सकता है कि देश में कुछ निर्वाचन-क्षेत्र ऐसे भी होते हैं, जहाँ उस दल के मतदाता अधिक होते हैं, जिसका कुल मिला कर देश में अल्पमत होता है। इन निर्वाचन-क्षेत्रों में इस अल्पमत दल के उम्मेदवार विजयी हो जाते हैं, इससे इस दल को संतोष रहता है। तथापि किसी निर्वाचन-क्षेत्र के संगठित दल का प्रतिनिधित्व न होने से, आधुनिक परिस्थिति में शासन उतने अंश में जन-मत के प्रभाव से वंचित रहता है, और फल-स्वरूप उतना निर्बल होता है।

इस प्रणाली के एक और परिणाम पर विचार करें। सब निर्वाचन-क्षेत्रों में विभिन्न दलों के मतदाताओं की संख्या समान

---

* जब व्यवस्थापक सभा में एक ही दल के सदस्य होते हैं, तो वहां उपस्थित होने वाले विषयों पर यथेष्ट तर्क-वितर्क न होने से, उन पर समुचित प्रकाश नहीं पड़ने पाता। किसी विषय के सब पहलुओं पर भली भांति विचार होने के लिए यह आवश्यक हैं कि उस पर वाद-विवाद हो (हां, यह कार्य शान्ति-पूर्वक होना चाहिए) और यह तभी हो सकता है, जब सभा में विविध दलों के भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोण वाले सदस्य हों।

अनुपात से नहीं रहा करती।* इससे अनेक दशाओं में इस प्रणाली के अवलम्बन से, व्यवस्थापक सभा में उस दल का बहुमत हो जाता है, जिसका देश में अल्प-मत होता है, और साथ ही, उस दल का अल्पमत हो जाता है, जिसका देश में बहुमत होता है। यह बात एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

कल्पना करो कि एक प्रान्त में चालीस निर्वाचन-क्षेत्र हैं, जिनमें से प्रत्येक से एक-एक प्रतिनिधि, अर्थात् कुल मिलाकर चालीस प्रतिनिधि चुने जाने हैं। यहाँ के कुल मतदाता २,२०,००० हैं, जिनमें से नर्म दल के १,२०,००० और उग्र दल के १,००,००० हैं। परन्तु ये मतदाता इस प्रकार विभाजित हैं कि उग्र दल के उम्मेदवारों का २५ ज़िलों में बहुमत है, इन ज़िलों के प्रत्येक उम्मेदवार को २८०० मत मिलते हैं; और शेष १५ ज़िलों में अल्प मत है, इन ज़िलों के इस दल के उम्मेदवारों में से प्रत्येक को २००० मत मिलते हैं।

इसे इस प्रकार दिखा सकते हैं:—

२५ ज़िलों में,	२५ × २८००	=	७०,००० मत
१५ ज़िलों में,	१५ × २०००	=	३०,००० मत
४० ज़िलों में,	योग	=	१,००,००० मत

* अधिकारियों द्वारा निर्वाचन-क्षेत्रों का सीमा-निर्धारण भी ऐसा हो सकता है, जिससे एक दल के मत संगठित हो जायँ, और दूसरे के बिखरे रहें।

अब नर्म दल का हिसाब लें, वह इस प्रकार है :—

२५ ज़िलों में से प्रत्येक में २७०० मत, और १५ ज़िलों में से प्रत्येक में ३५०० । अर्थात्

२५ ज़िलों में,	२५ × २७००	= ६७,५०० मत
१५ ज़िलों में,	१५ × ३५००	= ५२, ५०० मत
४० ज़िलों में,	योग	= १,२०,००० मत

इस प्रकार उग्र दल के केवल १,००,००० मतदाता होकर ही उसके २५ उम्मेदवार जीत जाते हैं; जब कि नर्म दल के १,२०,००० मतदाता होने पर भी उसके केवल १५ उम्मेदवार ही जीतते हैं। निदान, उग्र दल का प्रान्त में अल्प मत होकर भी व्यवस्थापक सभा में उसका बहुमत हो जाता है। इसके विपरीत, नर्म दल का प्रान्त में बहुमत होकर भी व्यवस्थापक सभा में उसका अल्प मत रह जाता है।

इस प्रकार एकाकी-मत प्रणाली की सदोषता स्पष्ट है। परन्तु जिन निर्वाचक-संघों से एक-एक ही प्रतिनिधि लिया जाना वाला हो, उनमें इस प्रणाली के उपयोग के सिवाय और कुछ चारा नहीं है। अस्तु, इस प्रणाली के दोष निवारण करने के प्रयत्नों में यथेष्ट सफलता न मिलने से इस प्रणाली की जगह दूसरी प्रणाली काम में लाने का विचार किया गया है।

अनेक-मत-प्रणाली—इस प्रणाली का व्यवहार वहां

किया जाता है, जहाँ प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से एक-एक ही नहीं, कई-कई प्रतिनिधि निर्वाचित करने होते हैं। इसमें प्रत्येक मत-दाता को केवल एक-एक ही मत देने का अधिकार नहीं होता, वरन् वह इतने मत दे सकता है, जितने प्रतिनिधि उस निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जाने वाले हों। इस प्रणाली के अनुसार मत सैकड़ों प्रकार से दिये जा सकते हैं, उनमें से मुख्य निम्न लिखित हैं:—

(क) 'एक उम्मेदवार, एक मत'—पद्धति।

(ख) 'एकत्रित मत' ('क्युम्युलेटिव वोट') पद्धति।

(ग) 'एकाकी हस्तान्तरित मत' ('सिंगल ट्रांसफरेबल वोट') पद्धति।

अब इनके सम्बन्ध में क्रमशः विचार करेंगे।

'एक उम्मेदवार, एक मत' पद्धति—जहां अनेक-मत-प्रणाली के इस भेद का उपयोग होता है, वहां बहुमत का ही बोल-बाला रहता है; अल्प मत का प्रतिनिधित्व नहीं होता।

उदाहरणवत्, कल्पना करो कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से चार प्रतिनिधि लिये जाने वाले हैं, अतः वहाँ प्रत्येक निर्वाचक को चार मत देने का अधिकार है। अब कल्पना करो कि यहाँ तीन दल हैं:—उग्र, नर्म और स्वतंत्र। उग्र दल के ४००, नर्म दल के ८००, और स्वतंत्र दल के ९०० मतदाता हैं। प्रत्येक दल अपने चार-चार उम्मेदवार खड़े करता है, और चाहता है कि उसके

ही सब उम्मेदवार प्रतिनिधि चुने जायँ। अब होता क्या है? उग्र दल के प्रत्येक उम्मेदवार को चार-चार सौ, मत मिलते हैं, नर्म दल के उम्मेदवार को आठ-आठ सौ, और स्वतंत्र दल के उम्मेदवार को नौ-नौ सौ।* इस प्रकार स्वतंत्र दल के चारों उम्मेदवार विजयी होने से प्रतिनिधि घोषित किये जाते हैं। उग्र दल के चारों, तथा नर्म दल के चारों, कुल मिलाकर शेष आठों उम्मेदवार हार जाते हैं; उनमें से कोई भी प्रतिनिधि नहीं चुना जाता। इस दशा में यह प्रणाली एकाकी मत प्रणाली की भांति दूषित प्रमाणित होती है।

'एकत्रित मत' पद्धति—अब अनेक-मत प्रणाली के उपयोग की दूसरी विधि अर्थात् एकत्रित-मत ('क्यूम्यूलेटिव वोट') पद्धति पर विचार करें। इसके अनुसार मतदाताओं को अधिकार होता है कि वे अपने मत अपनी इच्छानुसार वितरण करें; यहां तक कि जो मतदाता चाहे, वह अपने समस्त मत एक ही उम्मेदवार को भी दे सकता है। इस दशा में निर्वाचन-क्षेत्र का जो दल अपने आपको कमज़ोर अर्थात् अल्प-संख्यक समझता है, वह अपने एक ही उम्मेदवार को अपने समस्त मत दे देता है, इस प्रकार उसका कम-से-कम एक प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभा में अवश्य पहुँच जाता है। दृष्टान्तवत्,

* उदाहरण को सरल रखने के लिए यह मान लिया गया है कि प्रत्येक मतदाता अपना मत देता है, कोई अनुपस्थित नहीं है।

पूर्वोक्त उदाहरण में, कल्पना करो कि स्वतंत्र दल व्यवस्थापक सभा में अपने चारों प्रतिनिधि भेजने के लिए अपने उम्मेदवारों को, अपने समस्त मतदाताओं का एक-एक मत दिलाता है, इससे उसके प्रत्येक उम्मेदवार को नौ-नौ सौ मत मिलते हैं। अब यदि उग्र दल के मतदाताओं के समस्त मत उस दल के एक ही उम्मेदवार को मिल जाते हैं, तो उसके पक्ष में ४००×४=१६०० मत हो जाते हैं; इसी प्रकार नर्म दल के समस्त मत उस दल के एक ही उम्मेदवार को मिलने से उसके पक्ष में ८००×४=३२०० मत हो जाते हैं।

अब मताधिक्य के विचार से विजयी उम्मेदवारों का क्रम इस प्रकार रहता है:—

(१) नर्म दल का	उम्मेदवार	३२००
(२) उग्र दल का	,,	१६००
(३) स्वतन्त्र दल का	,,	९००
(४) ,, ,,	दूसरा उम्मेदवार	९००

इस प्रकार, इस प्रणाली से व्यवस्थापक सभा में किसी एक दल विशेष के ही प्रतिनिधि नहीं जाते, वरन् उग्र दल जैसे अल्प-संख्यक दल को भी अपना प्रतिनिधि भेजने का अवसर मिलता है। यही इसकी विशेषता है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अनेक-मत पद्धति का, जिसका एक स्वरूप एकत्रित-मत पद्धति है, व्यवहार वहां किया

जाता है जहां प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से एक-एक ही नहीं, कई-कई प्रतिनिधि निर्वाचित करने होते हैं। किसी निर्वाचक संघ से जितने प्रतिनिधि अधिक निर्वाचित करने होंगे, उतना ही इस पद्धति का प्रभाव विशेष मालूम होगा। जब निर्वाचन-क्षेत्र बड़े होते हैं, और एक-एक निर्वाचन-क्षेत्र से, पांच से लेकर चौदह-पन्द्रह तक प्रतिनिधि चुनने होते हैं, तो इस पद्धति से अल्प-संख्यक दलों को बहुत लाभ पहुंचता है।

परन्तु यह प्रणाली भी दोष-मुक्त नहीं। कुछ ख़ास सुप्रसिद्ध उम्मेदवारों को इतने अधिक मत मिल जाते हैं, जितने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती; इसके विपरीत, दूसरे उम्मेदवारों को मतों की न्यूनता रहती है, और इसलिए वे असफल रह जाते हैं। पूर्वोक्त दृष्टान्त में नर्म दल को अपना एक प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभा में भेजने के लिए उसे अपने मतदाताओं के ३२०० मत दिलाने पड़े हैं, जब कि वह ९०० से एक-दो ही अधिक मत मिलने पर भी प्रतिनिधि चुना जासकता था। मतदाताओं के इतने अधिक मतों का व्यर्थ जाना स्पष्टतः इस प्रणाली का दोष है। पुनः इस प्रणाली के अनुसार कार्य करने में भिन्न-भिन्न दलों के नेताओं को मतदाताओं का संगठन करने में जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी अनेक दशाओं में उन्हें व्यवस्थापक सभाओं में अपनी संख्या के अनुसार प्रतिनिधि भेजने में सफलता नहीं मिलती।

एकाकी हस्तान्तरित मत प्रणाली—इस प्रणाली का उपयोग ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों में ही किया जाता है जहां से कई-कई (प्रायः तीन से सात तक) प्रतिनिधियों का निर्वाचन होने वाला हो। भिन्न-भिन्न दलों के उम्मेदवार खड़े होते हैं। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता को यह सूचित करने का अवसर दिया जाता है कि वह सब उम्मेदवारों में, सबसे अधिक किसे पसन्द करता है, और उस से कम किसे, और इसी प्रकार तीसरे और चौथे आदि नम्बर पर किसे पसन्द करता है। जिस उम्मेदवार को वह सबसे अधिक पसन्द करता है उसके नाम के आगे वह '१' लिख देता है। उससे दूसरे नम्बर पर वह जिस उम्मेदवार को पसन्द करता है, अर्थात् शेष उम्मेदवारों में से जिसे वह सबसे अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '२' लिख देता है। इसी प्रकार वह '३', '४', '५', संख्या उन उम्मेदवारों के नाम के सामने लिख देता है, जिन्हें वह इस क्रम से पसन्द करता है। इस प्रकार मतदाता यह सूचित कर सकता है कि सर्व प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिए हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मतदाताओं के मतों से ही चुना जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिए हो, और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की आवश्यकता न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिए उसका उपयोग किया जाय।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिए पहले यह

देखा जाता है कि किसी उम्मेदावर को कम से कम कितने मत की आवश्यकता है। मतों की इस संख्या को 'कोटा', पर्याप्त संख्या या 'आनुपातिक भाग' कहते हैं। इसे समझने के लिए कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से एक उम्मेदवार चुनना है* और वहां सौ मतदाता हैं तो जिस उम्मेदवार को कम से कम ५१ मत मिल जायँगे; वह अवश्य चुन लिया जायगा, क्योंकि दूसरे उम्मेदवार को अधिक से अधिक ४९ ही तो मत मिल सकते हैं। इस प्रकार, इस दशा में पर्याप्त संख्या ५१ है, जो कुल मतों के आधे अर्थात् ५० से एक अधिक है। अब, यदि दो उम्मेदवारों को ३४, ३४ मत मिल जायँगे तो वे सफल हो जायँगे; क्योंकि तीसरे को यदि शेष सब मत भी मिलजायँ तो उसके प्राप्त मतों की संख्या (अधिक-से-अधिक) ३२ होगी। इस प्रकार इस दशा में पर्याप्त संख्या कुल मतों की तिहाई अर्थात् ३३ से एक अधिक है। निदान, कुल मतों को, निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या में एक जोड़ कर, उस से भाग देने से, तथा भजन-फल में एक जोड़ देने से पर्याप्त संख्या मालूम होजाती है। इस बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं :—

$$\text{पर्याप्त संख्या} = \frac{\text{मत संख्या}}{\text{प्रतिनिधि संख्या} + १} + १$$

* पहले कहा जा चुका है कि इस प्रणाली का उपयोग ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों में ही किया जाता है, जहां से प्रायः तीन से सात प्रतिनिधियों तक का चुनाव होने वाला होता है। यहां 'पर्याप्त संख्या' को समझाने के लिए, एक तथा दो उम्मेदवारों का उदाहरण लिया गया है।

जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेते हैं, जो पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वह निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। इन चुने हुए व्यक्तियों के जितने मत प्रर्याप्त संख्या से अधिक होते हैं, उन्हें 'सरप्लस' अथवा फ़ाज़िल या अतिरिक्त मत कहा जाता है। यह मत अपर्याप्त संख्या के मत वाले उम्मेदवारों में, (एक निर्धारित हिसाब से) बांटे जाते हैं। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते तो पर्याप्त संख्या से कम मत वाले उम्मेदवारों में से जिसके मत सब से कम होते हैं, उसे असफल घोपित करके, उसके प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के लिए किया जाता है, जिनके लिए वे मत दूसरी पसन्द में रखे गये हों। यह क्रिया उस समय तक होती रहेगी, जब तक कि जितने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करना है, उतने निर्वाचित न हो जायँ।

इस प्रणाली में मतदाता को यह लाभ रहता है कि उसका कोई मत व्यर्थ नहीं जाता, अर्थात् ऐसा नहीं होता कि उसका उपयोग न हो; और, वह मत किसी ऐसे व्यक्ति को भी नहीं मिलता, जिसे उसकी आवश्यकता न हो।

भारतवर्ष में प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों तथा (प्रस्तावित) संघीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों के चुनाव के लिए यही प्रणाली निर्धारित की गई है। कांग्रेस ने भी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों तथा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के निर्वाचन के लिए इसी

प्रणाली को अपनाया है। इसे अच्छी तरह समझाने के लिए एक उदाहरण* आगे दिया जाता है।

मान लीजिए, पटना ज़िला काँग्रेस कमेटी के ९५ सदस्य हैं, और उन्हें प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के लिए चार प्रतिनिधि चुन कर भेजने हैं। मान लीजिए इस चुनाव में तीन दलों ने अपने-अपने उम्मेदवार खड़े किये हैं। काँग्रेस दल के उम्मेदवार हैं:— सर्वश्री शारँगधर सिंह, गंगाशरण, अम्बिकाकान्त सिंह और मुकुटधारी सिंह। काँग्रेस समाजवादी दल के हैं, श्री श्यामनन्दन और श्री चन्द्रिका सिंह। हिन्दू-दल ने एक ही उम्मेदवार खड़ा किया है, और यह हैं श्री जगतनारायण लाल।

एक-एक करके ९५ मतदाता मत देने जाते है और निर्वाचन अध्यक्ष से मत-पत्र प्राप्त करते हैं, जो नीचे जैसा होता है:—

चुनाव का क्रम	उम्मेदवारों के नाम	
...	श्री	शारंगधर सिंह
...	,,	गंगाशरण सिंह
...	,,	अम्बिकाकान्त सिंह
...	,,	मुकुटधारी सिंह
...	,,	जगतनारायण लाल
...	,,	श्यामनन्दन सिंह
...	,,	चन्द्रिका सिंह

* 'नवशक्ति' में प्रकाशित प्रो० बल्देवनारायण जी के एक लेख के आधार पर।

सूचनाएँ

(क) जिस उम्मेदवार को आप चुनते हैं उसके नाम के पहले, चुनाव के क्रम का जो खाना है, उसमें १ का चिन्ह बना दीजिये।

(ख) आपको अधिकार है कि उस उम्मेदवार के बाद आप जिसका चुना जाना पसन्द करते हों, उसके नाम के पहले के खाने में २ का चिन्ह बना दीजिये। आप जितने चाहें उतने उम्मेदवारों को पसन्द कर सकते हैं, पर किसके बाद किसको पसन्द करते हैं यह साफ़ कर देने के लिए सब को ३, ४, ५......के चिन्ह खाने में अंकित करके नम्बरिया दीजिये।

सावधान! दो उम्मेदवारों के नाम के पहले एक ही चिन्ह न बनाइये; यदि बनाइयेगा तो मत-पत्र रद्द हो जायगा।

मत-पत्र लेकर मतदाता निर्जन कमरे में जाते हैं, और उस पर आदेशानुसार चिन्ह बना कर मत-पत्रों के सन्दूक़ में उसे डाल देते हैं। बस, उनका काम ख़त्म हो जाता है।

अब निर्वाचन-अध्यक्ष की बारी आती है। वह जिस उम्मेदवार के नाम के पहले जितने मतदाताओं ने नं० १ का चिन्ह बनाया है, उतने मत उस उम्मेदवार को देता है।

मान लीजिए उम्मेदवारों को इस तरह मत मिले:—

श्री शारंगधर सिंह..............२५

,, जगत नारायण लाल.........१८

,, श्यामनन्दन सिंह............१४

श्री गंगा शरण सिंह.............१३

,, अम्बिकाकान्त सिंह.........१०

,, मुकुटधारी सिंह..............९

,, चन्द्रिका सिंह...............६

अर्थात्, बाबू शारंगधर सिंह को २५ मतदाताओं ने अव्वल दर्जा दिया, और श्री जगत नारायण लाल को १८ ने। इसी तरह औरों के मत समझ लीजिए। अब मतदाता हैं ९५, और प्रतिनिधि चुनने हैं चार; इस लिए पर्याप्त संख्या हुई ९५÷(४+१)+१=२०, यानी जिसे २० मत मिले वह प्रतिनिधि चुन लिया गया। ऊपर देखिये, शारङ्गधर बाबू को २५ मत मिले हैं। बीस मत तो पर्याप्त संख्या ही है। इस लिए उन्हें ५ मत फाज़िल मिले। ये ही पांच मत, मतदाताओं के आदेशानुसार, अन्य उम्मेदवारों के लिए प्राप्त होंगे। वे अन्य उम्मेदवार कौन हैं, इसे जानने के लिए हमें देखना पड़ेगा कि उपर्युक्त २५ मत-पत्रों में उम्मेदवार नं० २ कौन-कौन हैं। मान लीजिए कि १५ मत-पत्रों में उम्मेदवार नं० २ गंगा बाबू हैं, और १० मत-पत्रों में मुकट बाबू हैं। अब १५ मत का पंचमांश गंगा बाबू को मिलेगा, और १० मत का पंचमांश मुकट बाबू को; पंचमांश इस लिए कि शारङ्गधर बाबू को पांच मत ही फाज़िल मिले हैं, जो क्रम से प्राप्य हैं; और ये २५ के, जो कि शारङ्गधर बाबू के कुल मत हैं, पंचमांश हैं। इस हिसाब से गंगा बाबू को शारङ्गधर बाबू के फाज़िल ५ मतों

में से तीन मत मिले, और मुकुट बाबू को दो मत। * परिणाम-स्वरूप मत-पत्र सार का परिवर्तित रूप इस प्रकार होगा :—

श्री शारङ्गधर सिंह (२५ – ५)	२० मत	(प्रतिनिधि चुने गये)
,, जगत नारायण लाल	१८ ,,	
,, गंगा शरण सिंह (१३ + ३)	१६ ,,	
,, श्यामनन्द सिंह	१४ ,,	
,, मुकुटधारी सिंह (९ + २)	११ ,,	
,, अम्बिका कांत सिंह	१० ,,	
,, चन्द्रिका सिंह	६ ,,	

हम साफ देख रहे हैं कि शारङ्गधर बाबू को छोड़ कर और किसी को पर्याप्त मत भी नहीं मिले। इस लिए उनके अतिरिक्त और किसी के पास फाज़िल मत हो ही नहीं सकते, जो क्रम से प्राप्य हों। इस लिए हमें उस उम्मेदवार को खोजना चाहिए, जिसे मत व्यर्थ ही मिले। ऐसे उम्मेदवार श्री चन्द्रिका सिंह हैं। पर जिन छः मत-

* कभी-कभी ऐसा भी किया जाता है कि अतिरिक्त या फाज़िल मत का बटवारा करने के लिए इस प्रकार का हिसाब नहीं लगाया जाता। उस दशा में, उपर्युक्त उदाहरण में बाबू शारङ्गधर सिंह के ५ फाज़िल मतों को बांटने के लिए २५ मत-पत्र मे दिये हुये दूसरी पसन्द के मतों का विचार नहीं किया जाता। पहले २० मत-पत्र पृथक् कर दिये जाते हैं, फिर जो भी ५ शेष बचते हैं, केवल उनमें ही सूचित की हुई दूसरी पसन्द देखी जाती है, कि वह किस-किस उम्मेदवार के लिए कितनी-कितनी संख्या में है।

दाताओं ने इन्हें मत दिये, उन्होंने अपने मत की दूसरी पसन्द का चिन्ह नहीं लगाया। इस लिए हम चन्द्रिकासिंह के छः मतों में से एक भी लेकर किसी दूसरे उम्मेदवार को नहीं दे सकते। चन्द्रिकासिंह जी के ठीक ऊपर अम्बिका बाबू का नाम है, जिन्हें दस मत मिले हैं। मत-पत्र सार में इनका स्थान छठा है, जब कि ज़िले को चार ही प्रतिनिधि चुनने हैं। इस लिए इनके मत भी व्यर्थ ही जायँगे, यदि ये मत किसी अन्य उम्मेदवार के लिए क्रम से प्राप्त न हुए। अच्छा, इनके (अम्बिका बाबू के) मत-पत्र देखिये। छः मत-पत्रों में नं० २ हैं श्री शारङ्गधर जी, और चार में नं० २ हैं गंगा बाबू। अम्बिका बाबू अपना फाज़िल ('सरप्लस') मत नहीं दे रहे हैं, वे तो उन मतों को दे रहे हैं जो उन्हें व्यर्थ ही मिले हैं। इस लिए इनका हर एक मत शारङ्गधर बाबू और गंगा बाबू को मिलेगा। पर शारङ्गधर बाबू को पर्य्याप्त मत प्राप्त हैं। इसलिए अम्बिका बाबू के ६ मतों में से कोई भी शारङ्गधर बाबू को न प्राप्त होकर ये सब मत उम्मेदवार नं० ३ को प्राप्त होंगे, जो श्री श्यामनन्दन सिंह हैं। गंगा बाबू को तो चार मत मिलेंगे ही। अब मत-पत्र सार का रूप ऐसा होगा :—

श्री शारङ्गधर सिंह	(२५ – ५) = २०	(चुने गए)
,, श्यामनन्दन सिंह	(१४ + ६) = २०	(,, ,,)
,, गंगा शरण सिंह	(१३ + ३ + ४) = २०	(,, ,,)
,, जगत नारायण लाल	१८	
,, मुकटधारी सिंह	(९ + २) = ११	

श्री चन्द्रिका सिंह ६

,, अम्बिका कान्त सिंह (१० – १०) = ० (हट गये)

अब प्रतिनिधि चुनने हैं चार, और पर्याप्त मत मिले तीन ही को। इसलिए अपर्य्याप्त मत प्राप्त उम्मेदवारों में जो चोटी पर होगा, वह भी प्रतिनिधि चुन लिया जायगा। बस, अब ज़िले को जगतनारायण बाबू सहित चार प्रतिनिधि मिल गये और निर्वाचन अध्यक्ष का काम समाप्त हुआ।

ऊपर के उदाहरण में एक विशेषता है, जिस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। कांग्रेस दल के दो ही सदस्य चुने गये हैं, यद्यपि उस दल को २५ + १३ + १० + ९ = ५७ मत मिले। कांग्रेस समाजवादी दल को १४ + ६ = २० मत मिले, और उनका एक सदस्य प्रतिनिधि बन गया। पर हिन्दू दल ने तो १८ ही मतदाताओं के बल से अपने एक उम्मेदवार को जिता दिया। इसका अर्थ यह है कि कांग्रेस दल की अपेक्षा शेष दोनों दल अधिक संगठित हैं। कांग्रेस दल संगठित होता तो चार की जगह तीन ही उम्मेदवार खड़ा करता और ऐसी हालत में इसकी दशा अपेक्षाकृत अच्छी होती। इसके एक उम्मेदवार अम्बिका बाबू के ६ मतदाताओं ने उम्मेदवार नं० २ कांग्रेस दल से न चुन कर समाजवादी दल से चुन लिया है। यदि उम्मेदवार नंबर २ श्यामनन्दन बाबू की जगह मुकुट बाबू होते तो कांग्रेस दल के तीन उम्मेदवार चुन लिये जाते। एक बात और है। चन्द्रिका बाबू के मतदाताओं ने उम्मेदवार नं० २

को चिन्हित ही नहीं किया। यदि उनके समाजवादी मतदाता श्यामनन्दन बाबू को उम्मेदवार नंबर २ बनाते तो श्याननन्दन बावू को पर्याप्त मत मिलते ही, इसलिए वे तब भी चुन लिये जाते। मतलब यह कि इस प्रणाली का परिणाम उतना ही युक्ति-संगत होगा, जितने संगठित, दल होंगे। संगठित दल के लिए यह अनुमान कर लेना कि उसे कितने मत मिलेंगे, ज्यादा कठिन नहीं है। फिर पर्याप्त संख्या को दृष्टि में रखकर, दल निर्णय कर सकता है कि उसे कितने उम्मेदवार खड़े करने चाहिएँ। अल्प से अल्प मत का दल भी निश्चय कर सकता है कि उसे चुनाव में शामिल होना चाहिए या नहीं; यदि होना चाहिए तो कितने उम्मेद-वारों को ले कर।

यह प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा नवीन है और इसके अनुसार मत-गणना के कार्य में परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। परन्तु यह सब से अधिक उपयोगी और न्यायोचित होने के कारण इसी का अधिक प्रचार होता जाता है। तथापि हमें इसके उपयोग की सीमाओं को नहीं भूलना चाहिए। इसका उपयोग प्रायः उन्हीं निर्वाचनों में किया जाता है, जहाँ निर्वाचन अप्रत्यक्ष होता है, अथवा जहाँ उम्मेदवारों की संख्या बहुत परिमित होती है। प्रत्यक्ष और बड़े निर्वाचक-संघों में इसका उपयोग बहुत जटिल हो जाता है।

उदाहरणवत, प्रस्तावित संघीय व्यवस्थापक सभा में मदरास प्रान्त

के साधारण प्रतिनिधियों की संख्या १९ निर्धारित की गयी है। कल्पना करो इन स्थानों के लिए पचास उम्मेदवार है, और इन का निर्वाचन अप्रत्यक्ष न होकर (जैसा कि इस समय निश्चय किया हुआ है) प्रत्यक्ष हो, और साथ ही, बालिग़ मताधिकार भी हो तो मदरास की साढ़े चार करोड़ जनता में से लगभग सवा दो करोड़ आदमी निर्वाचक होंगे। विशेषतया जब कि सर्व साधारण में शिक्षा का प्रचार नहीं है, उक्त निर्वाचकों में बहुत कम ऐसे निकलेंगे, जो गंभीरता-पूर्वक इस बात का विचार कर सकें कि पचास उम्मेदवारों में से किसे सब से अधिक पसन्द किया जाय, और किसे दूसरे नंबर पर, और किसे तीसरे, चौथे, या पाँचवे नंबर पर। साधारणतया यही होगा कि निर्वाचक प्रथम पसन्द के उम्मेदवार के नाम के सामने तो कुछ सोच-विचार कर निशान लगाएँगे, और शेष के नामों के सामने योंही निशान लगा देंगे, अथवा कुछ दशाओं में न भी लगाएँगे। ऐसा होने पर इस प्रणाली की विशेषता ही जाती रहती है, और इस का मुख्य उद्देश्य सफल नहीं होता। अस्तु, यह प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक न्याययुक्त होने पर भी इसका बड़े और प्रत्यक्ष निर्वाचन में यथेष्ट उपयोग नहीं हो सकता।

नवाँ अध्याय

निर्वाचन अपराध

यह स्पष्ट है कि निर्वाचन कार्य एक प्रकार का युद्ध है। प्रत्येक उम्मेदवार अपने प्रतियोगी उम्मेदवार की अपेक्षा अधिक मत संग्रह करने का प्रयत्न करता है। अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि जो व्यक्ति उम्मेदवार होने के लिए पहले विशेष इच्छुक न थे, और जिन्होंने दूसरों के बहुत समझाने-बुझाने पर ही उम्मेदवारी का पर्चा दाख़िल किया था, वे निर्वाचन में विजयी होने के लिए, पीछे बड़े जोश से काम करने लगे।

अस्तु, बहुधा यह आशंका रहती है कि उम्मेदवार कोई ऐसी अनियमित कार्रवाई न कर गुज़रें, जिससे निर्वाचन कार्य बहुत दूषित हो जाय। इसे रोकने के लिए प्रत्येक देश में जहां-जहां निर्वाचन होता हैं, कुछ ऐसे नियम बनाये जाते हैं, जिनके अनुसार निर्वाचन सम्बन्धी अनियमित कार्य दंडनीय अपराध माने जाते हैं। यद्यपि उक्त नियमों के बन जाने से अपराधों का सर्वथा अभाव नहीं हो जाता और कुछ आदमी अपराध करते हुए भी क़ानून से साफ़ बचे रहते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि आवश्यक नियम बन जाने से, तथा उनमें समय-समय पर देश-

काल की परिस्थिति के अनुसार, परिवर्तन होते रहने से, परिस्थिति बहुत बिगड़ने नहीं पाती।

अपराध माने जाने वाले कार्य—भारतवर्ष में व्यवस्थापक सभाओं के निर्वाचन के लिए निम्न-लिखित कार्य अपराध माने जाते हैं* :—

१—रिशवत,

२—अनुचित प्रभाव,

३—झूठे नाम से कार्य करना,

४—झूठा बयान प्रकाशित करना,

५—निर्वाचन-व्यय का हिसाब न देना, या झूठा हिसाब देना।

६—निर्वाचक को सवारी ख़र्च देना,

७—किराये की सवारियों को भाड़े पर लेना,

७—शराब की दुकानों को किराये पर लेना,

९—मुद्रक या प्रकाशक के नाम के बिना, कोई सूचना आदि प्रकाशित करना,

इन में से पहले पांच अपराध बड़े, और शेष चार छोटे माने जाते हैं। इन अपराधों के लिए अपराधियों को जेल या जुर्माने का भिन्न-भिन्न दण्ड दिया जाता है, अथवा निर्धारित समय के लिए निर्वाचन-

---

* म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों के निर्वाचन के लिए इन में से प्रायः पहला, दूसरा, तीसरा चौथा और नवां कार्य अपराध माना जाता है।

अधिकार से वंचित किया जाता है। अब हम इन अपराधों के सम्बन्ध में क्रमशः कुछ स्पष्टीकरण करते हैं।

(१) उम्मेदवार या उसके एजंट स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी व्यक्ति को कोई वस्तु या रुपया इस उद्देश्य से दें, या देने का वचन दें कि वह व्यक्ति निर्वाचन के लिए उम्मेदवार हो जाय, या उम्मेदवार न हो, या उम्मेदवारी से बैठ जाय, अथवा यह व्यक्ति उसके पक्ष में मत दे या मत बिल॰ कुल ही न दे तो वह उम्मेदवार या एजंट रिशवत देने का अपराधी माना जाता है, चाहे वह वस्तु या रुपया उपर्युक्त कार्य किये जाने के लिए इनाम के तौर पर दिया जाय।

निर्वाचन के समय निर्वाचकों को भोजन कराना, शरबत या शराब आदि पिलाना, दावत देना या देने का वायदा करना भी रिशवत समझी जाती है। यदि ज़मींदार अपने काश्तकारों को विशेष अधिकार, उनका मत प्राप्त करने के लिए दे, तो वह भी रिशवत मानी जाती है।

(२) जो व्यक्ति किसी उम्मेदवार या निर्वाचक या किसी अन्य ऐसे मनुष्य को, जिसका उम्मेवार वा निर्वाचन से घनिष्ट सम्बन्ध हो, किसी तरह का नुक़सान पहुंचाने की धमकी दे, या इस प्रकार की धमकी दे कि यदि वह उसके कथनानुसार कार्य न करेगा तो वह दैवी कोप या पाप का भागी होगा, तो वह व्यक्ति अनुचित प्रभाव डालने का अपराधी माना जाता है।

(३) यदि कोई उम्मेदवार या उसका एजंट स्वयं, या किसी अन्य

व्यक्ति द्वारा, निर्वाचन-पत्र के लिए, किसी व्यक्ति से अन्य (जीवित या मृत) व्यक्ति के नाम से दर्ख़ास्त दिलाये, या एक व्यक्ति से दो भिन्न-भिन्न नामों से दर्ख़ास्त दिलाये तो वह उम्मेदवार या उसका एजंट झूठे नाम से कार्य करने का अपराधी माना जाता है ।

(४) यदि कोई उम्मेदवार या उसका एजंट स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अन्य उम्मेदवार के आचरण या व्यवहार के विरुद्ध ऐसा बयान प्रकाशित कराये, जिसे वह जानता हो कि सच नहीं है, और जिससे उसके प्रतियोगी उम्मेदवार के निर्वाचन में हानि पहुंचने की संभावना हो, तो वह उम्मेदवार या उसका एजंट झूठा बयान प्रकाशित करने का अपराधी माना जाता है ।

(५) निर्वाचन का परिणाम प्रकाशित होने से एक निर्धारित अवधि के भीतर, उम्मेदवार और उसके एजंट को निर्वाचन सम्बन्धी अपने व्यय का, और विशेषतया निम्नलिखित पूरा हिसाब निर्वाचन-अध्यक्ष के पास भेज देना चाहिए:—(अ) उम्मेदवार का निर्वाचन में सफर सम्बन्धी तथा अन्य निजी व्यक्तिगत व्यय। (आ) एजंट, सब-एजंट, क्लर्क तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन (प्रत्येक के नाम सहित)। (इ) इन सब कर्मचारियों का सफ़र सम्बन्धी व्यय। (ई) अन्य व्यक्तियों का निर्वाचन सम्बन्धी व्यय। (उ) छपाई, विज्ञापन, स्टेशनरी, डाक-तार व्यय, सभा आदि के वास्ते लिये हुए मकान का किराया । (ऊ) निर्वाचन सम्बन्धी अन्य विविध व्यय ।

(६) किसी निर्वाचक को मत देने के लिए आने या जाने का, सवारी ख़र्च देने के लिए, किसी व्यक्ति को कुछ द्रव्य न देना चाहिए और न देने का वायदा करना चाहिए।

(७) किसी ऐसी किश्ती, गाड़ी या जानवर को निर्वाचन-कार्य के लिए भाड़े पर लेना, या मांगना, जो साधारणतया किराये पर चलते हैं, या किराये के लिए रहते हैं, निर्वाचन-अपराध है।

उम्मेदवार अपने मित्र आदि दूसरे व्यक्ति की ऐसी सवारी मांग कर उपयोग कर सकता है, जो किराये पर न चलती हो; परन्तु शर्त यह है कि उसके लिए जो ख़र्च हो, (जैसे मोटर में तेल ख़र्च होता है) वह सवारी का मालिक ही दे। उम्मेदवार अपने एजंट आदि कर्मचारियों के लिए किराये की सवारियों का प्रबन्ध कर सकता है।

(८) कोई ऐसा मकान या कमरा या अन्य जगह निर्वाचकों की सभा या कमेटी के लिए किराये पर न लेनी चाहिए, और न उसका उपयोग करना चाहिए, जहां सर्वसाधारण को शराब बेची जाती हो।

(९) निर्वाचन सम्बन्धी कोई ऐसी सूचना या इश्तहार आदि प्रकाशित कराना, जिस पर मुद्रक या प्रकाशक का नाम न हो, निर्वाचन-अपराध है।

उम्मेदवार के एजंट को चाहिए कि निर्वाचन सम्बन्धी-सूचनाएँ या इश्तहार छपाने का काम, अपने मित्रों या मुलाहिज़े वालों से न करा कर, ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा कराये, जिनका पेशा छपाई का काम करना है। उसे यह भी चाहिए कि छपाई के ठीक ठीक बिल लेकर उन्हें पूरी तरह चुका दे।

निर्वाचन सम्बन्धी दर्खास्तें—व्यवस्थापक सभाओं के प्रत्येक उम्मेदवार के निर्वाचन-व्यय के हिसाब को, निर्वाचन अध्यक्ष के पास भेजे जाने की बात ऊपर कही जा चुकी है। निर्वाचन-अध्यक्ष इस हिसाब के मिलने की सूचना निर्वाचक-संघ में करा देता है। जिस दिन निर्वाचन-अध्यक्ष को निर्वाचित उम्मेदवार का हिसाब मिलता है, उससे निर्धारित समय के भीतर, गवर्नर को, किसी निर्वाचित उम्मेदवार का निर्वाचन रद्द कराने की दर्ख़ास्त दी जा सकती है। (क) यदि सरकार द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त किसी अफ़सर को यह पता लगे कि निर्वाचन के समय रिशवतबाज़ी हुई या अनुचित प्रभाव डाला गया तो वह ऐसी दर्खास्त दे सकता है। (ख) यदि कोई उम्मेदवार या उसका एजंट रिश्वत देने, अनुचित प्रभाव डालने या झूठे नाम से कार्य कराने का दोषी ठहराया जाय तो दोषी ठहराये जाने के दिन से निर्धारित समय के अन्दर; कोई उम्मेदवार या निर्वाचक उपर्युक्त प्रकार की दर्खास्त दे सकता है।

ऐसी दर्खास्त देने वाले व्यक्ति को, दर्खास्त के साथ एक निर्धारित रक़म जमा करनी होती है। परन्तु यदि दर्खास्त, प्रान्तीय सरकार से नियुक्त किसी अफ़सर द्वारा दी जाय तो इस प्रकार की कोई रक़म जमा करने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक दर्ख़ास्त में, संक्षेप में, वे सब बातें होनी चाहिएँ जिनके आधार पर दर्खास्त देने वाला, मुक़दमा चलाना चाहता है। उस दर्खास्त के साथ एक सूची दी जानी चाहिए,

जिसमें प्रत्येक ऐसे निर्वाचन-अपराध का पूरा ब्यौरा हो, जो वह अपने विपक्षी के विरुद्ध साबित करना चाहता है। इस सूची में यह भी बतलाया जाना चाहिए कि वह अपराध किस तारीख़ को, किस स्थान में हुआ, किसने और किसके विरुद्ध किया, और, यदि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध अपराध किया गया, निर्वाचक है तो उसका निर्वाचक-नम्बर क्या है।

किसी निर्वाचन को रद्द किए जाने की दर्ख़ास्त नियमित रूप से मिल जाने पर, गवर्नर उसकी जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त करता है। यह कमीशन गवर्नर द्वारा निर्दिष्ट किये हुए स्थान पर अपनी जांच का कार्य आरम्भ कर देता है। कमीशन की जांच में, विपक्षियों को अपने तई निर्दोष साबित करने का यथेष्ट अवसर दिया जाता है, और यदि वे चाहें तो यह भी साबित कर सकते हैं कि दर्ख़ास्त देने वाला व्यक्ति निर्वाचन-अपराध का दोषी है। यदि कमीशन का यह निर्णय हो कि निर्वाचन के समय कोई बड़ा निर्वाचन-अपराध किया गया है, या ऐसी दूषित कारवाई की गयी है जिसका चुनाव पर भारी असर पड़ा है, या कोई उम्मेदवारी का प्रस्ताव-पत्र, या किसी का मत-पत्र अनियमित रूप से ले लिया गया या अस्वीकार कर दिया गया है, तो निर्वाचित उम्मेदवार का निर्वाचन रद्द कर दिया जाता है, और निर्वाचन दुबारा किये जाने की आज्ञा दी जाती है; या दर्ख़ास्त देने वाले व्यक्ति को ही, अगर वह

उम्मेदवार हो, निर्वाचित उम्मेदवार समझे जाने की आज्ञा दी जाती है। *

भारतवर्ष में निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्तें बहुत कम दी जाती हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि बहुधा आदमी निर्वाचन-अपराध को होता जान लेने या देख लेने पर भी, यह सोचते हैं कि दर्ख़ास्त के साथ निर्धारित रक़म जमा करनी पड़ेगी, अपराध को क़ानूनी दृष्टि से साबित करना कठिन होगा, अदालत में बहुत ख़र्च करना होगा और परेशानी उठानी पड़ेगी। इसलिए वे उसके विषय में मुक़दमा चलाने या निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्त देने का साहस नहीं कर सकते। इन विषयों में शीघ्र सुधार होना चाहिए। तभी इन दर्ख़ास्तों की संख्या कुछ विशेष रूप से बढ़ेगी, और, अधिक अपराधों को प्रकाश में लाया जा सकेगा; और तभी, अपराधों की संख्या घटने से, निर्वाचन-कार्य अधिक निर्दोष होने में सहायता मिलेगी।

---

* ये बातें विशेषतया व्यवस्थापक सभाओं को लक्ष्य में रख कर लिखी गयी हैं। म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों में भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था है; हां, कम परिणाम में; उदाहरणवत् उनके निर्वाचन सम्बन्धी दर्ख़ास्त देने वाले को अपेक्षाकृत बहुत कम रक़म जमा करनी होती है।

दसवाँ अध्याय

उपसंहार

"निर्वाचकों को उचित शिक्षा देने का विषय बड़े महत्व का है।"

इस पुस्तक के पिछले अध्यायो में हम निर्वाचन सम्बन्धी विविध विषयों की आलोचना करते हुए तत्सम्बन्धी आदर्शों का भी दिग्दर्शन भी करा आये हैं। भारतवर्ष में निर्वाचन सम्बन्धी निम्नलिखित सुधारों की विशेष आवश्यकता है :—

१—विशेष प्रतिनिधित्व ठीक नहीं।

२—जाति-गत निर्वाचक-संघ न रहने चाहिएँ।

३—उम्मेदवार उच्च आदर्श वाले व्यक्ति हों; यदि कोई व्यक्ति स्वयं उम्मेदवार खड़ा न हो तो बहुत उत्तम है।

४—निर्वाचकों को शिक्षित करने का विशेष प्रयत्न होना चाहिए।

५—भारतवर्ष में निर्वाचन-अधिकार बहुत कम जनता को है, यहां बालिग मताधिकार की आवश्यकता है।

इनमें से अन्य बातों के विषय में तो पहले कहा जा चुका है, यहां निर्वाचकों की शिक्षा के बारे में ही कुछ वक्तव्य है। इस ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया गया है। जब निर्वाचन का समय

आता है तो जिन व्यक्तियों का (उम्मेदवार या उसके एजंट या मित्र आदि होने की हैसियत से, या किसी अन्य स्वार्थ से) निर्वाचन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, वे सूचनाएँ या लेख छपवाते, भाषण दिलाते, तथा अन्य आन्दोलन करते हैं। परन्तु जन-साधारण में इस विषय के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता। इस विषय की जानकारी के लिए पाठकों को सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के कुछ लेखो पर सन्तोष करना पड़ता है; उल्लेखनीय महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। निर्वाचन-सम्बन्धी शिक्षा का कार्य कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं को अपने ऊपर विशेष रूप से लेना चाहिए, वे बारहों महीने लेखों, भाषणों, ट्रेक्टों तथा ग्रन्थों द्वारा इस कार्य को करती रहें। अच्छा हो, प्रत्येक नगर में म्युनिसिपल निर्वाचक-संघ, और ज़िले में ज़िला-निर्वाचक संघ की स्थापना हो। इन संघों का उद्देश्य अपने-अपने क्षेत्र के निर्वाचकों में नागरिक उत्तरदायित्व की भावना का प्रचार करना, तथा नागरिक समस्याओं और आवश्यकताओं को जातिगत या साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर, उनके सम्बन्ध में विशुद्ध नागरिक दृष्टिकोण रखने की प्रवृत्ति बढ़ाना, होना चाहिए। कुछ वर्षों तक ऐसा उद्योग निरन्तर होते रहने से ही हमारे यहां नागरिक जागृति यथेष्ट मात्रा में हो सकेगी।

परिशिष्ट

मैं किसे मत दूँ ?

म्युनिसिपल मतदाता की समस्या*

"नागरिकता या राष्ट्रीयता की सब से सच्ची जांच म्युनिसिपैलटियों और ज़िला-बोर्डों के चुनावों और कार्यों में होती है। कौंसिल और एसेम्बली के चुनावों में मतदाताओं और उम्मेदवारों को उतने निकट और पतनोन्मुख करने वाले प्रलोभनों का सामना नहीं करना पड़ता, जितना म्युनिसिपल बोर्ड या ज़िला-बोर्ड के चुनाव में करना पड़ता है।"

—देवीदत्त मिश्र, बी० ए०

भगवन् ! मैं इस बात के लिए कितना तरसता रहता हूँ कि मेरे इस प्यारे पूज्य नगर के लिए काफ़ी संख्या में स्वयं-सेवक मिल सकें जो इसके धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आदि विविध क्षेत्रों में सेवा-भाव से कार्य करते हुए अपना जन्म सफल करें, और साथ ही इस पुण्य भूमि का उद्धार करें, इसे अन्य उत्तम नगरों की श्रेणी में लायें।

* श्री केला जी के वृन्दावन म्युनिसिपल बोर्ड के निर्वाचन के अवसर पर लिखे हुए दो लेखों के आधार पर।

सच्चे सेवकों की कमी—भगवन् ! आज मैं क्या देख रहा हूँ ! जो आदमी सेवा का मतलब निज स्वार्थ-साधन समझते थे, जो दलितों और दीन-दुखियों की ओर कृपा-दृष्टि करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे, वे भी आज म्युनिसिपल चुनाव का अवसर उपस्थित हो जाने पर जन-साधारण के सेवकों में भरती होने के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं। उनमें आपस में प्रतियोगिता लगी है। इसमें क्या रहस्य है! हमारे नगर में तीन 'वार्ड' हैं। नियम कहता है कि यहां नौ प्रतिनिधि होने चाहिएँ। यदि वास्तव में स्वार्थ-त्याग करने और मातृ-भूमि के लिए बलिदान होने की कसौटी होती, तो यह नौ की संख्या भी जैसे-तैसे पूरी हो सकती। पर अब तो बात ही दूसरी है। निर्धारित संख्या से दूने-तिगुने व्यक्ति आ पहुँचे हैं। "मान न मान, मैं तेरा मेहमान।" कहावत है—"तीन बुलाये तेरह आये।" भला उस ग़रीब की क्या दशा होगी, जिसके यहां केवल तीन-चार आदमियों के रहने की व्यवस्था हो, और इससे तिगुने-चौगुने मेहमान पहुँच जायँ।

मेरी समस्या—मेरे लिए यह विकट समस्या है कि मैं योग्य-अयोग्य का निर्णय कर, किसे मत दूँ। इन भले आदमियों ने, इतनी बड़ी संख्या में उम्मेदवार बनने से भी अधिक, मुझे इस बात से चक्कर में डाल दिया है कि सभी अपना गुण-गान करने में मानों बृहस्पति बने हुए हैं। और मौक़ों पर तो ये

आत्म-स्तुति की निन्दा करते हैं, पर इस समय तो इसे दुर्गुण की जगह गुण ही मान रहे हैं। ये शील-संकोच को छोड़ कर पूर्ण रूप से उसमें व्यस्त हैं, और जहां वे किसी कारण से स्वयं मियां-मिट्ठू होने से परहेज़ करते हैं, वहां अपने दलालों या एजंटों से उस कमी की भली भांति पूर्ति करा देते हैं। ऐसी स्थिति में उनका निर्वाचन करने में, मेरे सामने वैसा ही धर्म-संकट उपस्थित हो गया है जैसा दमयन्ती को अपना पति चुनने के समय हुआ था। नहीं, मेरा संकट तो कुछ और भी अधिक है। यहाँ तो 'नगर-पिता' बनने की हविस वाला, प्रत्येक उम्मेदवार व्यक्तिगत बातों की दुहाई देता है; मुझपर समय समय पर, जान में या अनजान में किये हुए, छोटे या बड़े अहसानों की बार-बार याद दिलाता है, और, सब के सब मेहरबान मुझसे इसी समय इसी रूप में अपना कर्ज़ा वसूल करना चाहते हैं कि मैं उन्हें अपना नगर-प्रतिनिधि मान लूँ।

अनेक उम्मेदवार—एक महाशय हैं, ये कभी-कभी राह चलते या मेरे घर आकर भी कुशल-क्षेम पूछ लेते हैं, सहानुभूति की दो बातें कह जाते हैं। बड़े विनम्र और मृदुभाषी हैं। हर समय यही कहा करते हैं, "अपने इस सेवक से भी कुछ काम लिया करें, आपके लिए जी-जान हाज़िर हैं।" आज तो इनका मतलब ही ठहरा। इनकी विनम्रता और शिष्टाचार का क्या ठिकाना! मैं इस पर मुग्ध हूँ। पर क्या ये नगर की कुछ सेवा

करते रहे हैं; क्या मैं इन्हें अपना बहुमूल्य मत दे दूँ ? ये तो मुझे वचन-बद्ध करने पर ही तुले हैं।

दूसरे महाशय हैं, एक अच्छे चिकित्सक। ये धनी लोगों से प्राप्त शुल्क और पुरस्कार आदि पर अपनी ज़िन्दगी मज़े से व्यतीत करते हैं और कभी-कभी निर्धनों का भी इनसे कुछ भला हो जाता है। किसी से फ़ीस में कमी या माफ़ी कर देते हैं। किसी को दवाई बिना मूल्य देकर अपना चिर-ऋणी बना लेते हैं। मैं भी इनकी कृपा-दृष्टि का पात्र रहा हूँ, पर क्या मैं आज म्युनिसिपैलटी में इनकी उपयोगिता अनुपयोगिता का विचार न कर केवल अपनी कृतज्ञता सूचित करने के लिए ही इन्हें अपना मत प्रदान कर डालूँ !

तीसरे महाशय एक बड़े व्यापारी हैं। इनका नगर के कितने छोटे-मोटे व्यापारियों से सम्बन्ध है। मुझे भी कभी कभी इनके सलाह-मशवरे से किसी चीज़ में दो पैसे का नफा हो जाता है। आज ये चाहते हैं कि मैं इसका लिहाज़ करूं, और इन्हें आगामी चार वर्ष के लिए नगर का भाग्य-विधाता बनने में सहायता दूं। इनकी यह मांग कहां तक उचित है ?

चौथे महाशय एक धनी सज्जन हैं, खूब आमदनी है। समय-समय पर ऐसे भी काम करते रहते हैं, जिनसे इनकी धार्मिक भावना की खूब विज्ञप्ति और प्रशंसा होती है। राष्ट्रीय कार्य में सहायता करना कम पसन्द करते हैं। आज मेरे सामने यह समस्या

है कि इन्हें मत देकर इनसे राष्ट्रीय कार्य की आशा बनाये रखूं, या उस पर तिलांजली दे दूं।

कठिन कार्य—कहां तक गिनाऊं! किस-किस की बात कहूं! किसी का अनादर नहीं करना चाहता, सभी मेरे लिए अच्छे हैं। नगर में रहता हूं तो सभी से थोड़ा-बहुत काम पड़ता है और इस दृष्टि से मैं सभी का कृतज्ञ हूँ। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस कृतज्ञता को सूचित कराने का जो ढंग इन लोगों ने इख्तियार किया है, उसे मैं किस प्रकार अमल में लाऊं। ये भले आदमी इतनी बड़ी संख्या में उम्मेदवार न बनते तो मेरे लिए यह कठिन समस्या पैदा न होती; पर, इन्हें मेरी कुछ फिक्र कैसे हो सकती है! ये अपनी धुन में थे, किसी तरह पांच सवारों में हमारी भी गिनती हो जाय; कुछ तो मुहूर्त देखकर, और कुछ बे-हिसाब ही अपने भाग्य की परीक्षा के लिए आ डटे हैं। मैं क्या करूं!

अपनी दशा का कैसे वर्णन करूं! जनता के सेवक बनने वाले इन उम्मेदवारों के मारे नाक में दम है। कभी एक आता है, कभी दूसरा। साधारण शिष्टाचार के नाते अपना काम छोड़ कर दो घड़ी उनसे बातें करना ज़रूरी होता है। यदि बातें न की जायँ तो वे लोग मुझे घमंडी और न जाने क्या-क्या कहने लग जायँ। परन्तु बातें भी की जायँ तो कहां तक। एक गया, कुछ देर पीछे दूसरा आया। फिर तीसरे का नम्बर है। तांता बँधा ही रहता है। एक उम्मेदवार कई-कई चक्कर लगाता है; जब वह स्वयं

नहीं आता तो उसका एजंट आ पहुँचता है। न दिन में चैन, न रात को।

तरह-तरह के दबाव—ये लोग मुझ पर अनेक प्रकार से दबाव डालते हैं। कोई अपने सम्प्रदाय या आचार्यत्व की दुहाई देता है। कोई मुझे मित्रता तथा जाति-बिरादरी के नाम पर अपील करता है। मैं इन सब बातों को सुनते-सुनते उकता गया। पर उनके सिर पर तो मेम्बरी का भूत सवार है। उन्होंने इन दिनों अपना खाना-पीना तक हराम कर रखा है। अब तो गली, बाज़ार, और (वोटरों के) घर-घर घूमना ही उनका पूजा-पाठ है। नित्य इस स्वाध्याय में लगे रहते हैं कि अमुक मतदाता पर उसके किस भाई बन्धु, मित्र, गुरु, आचार्य या सरकारी कर्मचारी द्वारा किस-किस प्रकार से दबाव डाला जा सकता है। जो हो, इन उम्मेदवारों ने मुझे खूब ही परेशान कर रक्खा है। अब मैं सोचूँगा कि ऐसी परिस्थिति में अपने कठोर कर्तव्य का किस भांति पालन करूँ; अपने इस मत-प्रदान सम्बन्धी नागरिक अधिकार का किस तरह न्याय और ईमानदारी से उपयोग करूँ।

म्युनिसिपल चुनाव का प्रश्न हमारी परीक्षा के लिए चार साल में एक बार आता है। यदि हम असावधान रहे तो चार वर्ष तक उसका दंड भुगतना, या प्रायश्चित करते रहना होता है। अतः हमें सावधानी पूर्वक, गम्भीरता से काम लेना चाहिए। यदि हम साहस और आत्म-बल का परिचय न देंगे तो हमारी

आंखों के सामने नागरिक हितों का खून होगा। उसके दोषी हम होंगे।

उम्मेदवारों से प्रश्न—उम्मेदवार और उनके एजंट हमें तरह-तरह से बहकावे में डालने का प्रयत्न करते हैं। हमें किसी के धोखे में न आना चाहिए। हमें खूब याद रखना चाहिए कि हमारा मत (वोट) हमारी बहुमूल्य सम्पत्ति है; उसे बिना विचारे या किसी के दबाव से योंही दे डालना उचित नहीं है। हमें प्रत्येक उम्मेदवार से निर्भयता-पूर्वक सवाल-जवाब करके अपने मन का पूरा समाधान कर लेने पर ही, उसे अपना वोट देने का निश्चय करना चाहिए।

अब तक क्या किया?—मैं प्रत्येक उम्मेदवार से कहूँगा, "आप मेम्बर होकर नगर का हित करेंगे, यह हम तभी मान सकते हैं जब हमें यह विश्वास होजाय कि आपने पहले भी कुछ सार्वजनिक सेवा की है। क्या आपने अपने स्वार्थ को छोड़कर, कोई ऐसा कार्य किया है जिससे आपको शारीरिक कष्ट, या आर्थिक हानि उठानी पड़ी है? क्या आपने राष्ट्रीय अथवा नागरिक सेवा करके दीन-दुखी भारत-माता का कष्ट निवारण करने का कोई सच्चा और निष्कपट प्रयत्न किया है? स्वदेशी को प्रोत्साहन देकर अपने निर्धन और बेकार बन्धुओं की सुधि ली है?

भविष्य में क्या करेंगे?—मैं उम्मेदवार से पूछूँगा कि बोर्ड में जाने से आपका उद्देश्य क्या है? मान लीजिए कि आप

बोर्ड के मेम्बर बन जायँ तो आप वहाँ क्या लक्ष और कार्य-क्रम रखकर अपनी नीति निर्धारित करेंगे ? यदि आपके सामने कोई कार्य-क्रम ही नहीं है, तो आप बोर्ड में जाते ही क्यों हैं ? क्यों नहीं, किसी दूसरे योग्य और उत्साही व्यक्ति के लिए रास्ता साफ़ कर देते ? आप मुझे गोल-मोल शब्दों में यह न कह दें कि मैं बोर्ड में आप लोगों की सेवा करूंगा; कृपया स्पष्ट बातें करिए। कम से कम जो बातें इस समय हमारे सामने हैं उन पर अपनी निश्चित सम्मति दीजिए, तब हम भी आपको अपना मत देने का निश्चय करेंगे।

चेयरमैन कैसा चुनेंगे—"मैं यह नहीं पूछता कि आप चेयरमैन किस आदमी को चुनेंगे, उसका नाम राम हो या श्याम हो, इससे मुझे कुछ मतलब नहीं। वह वैश्य हो या ब्राह्मण हो, बङ्गाली हो या संयुक्त प्रान्तीय हो, यह भी कोई विचार की बात नहीं। उसकी जाति या सम्प्रदाय कुछ ही हो। सोचना यह है कि नागरिक विषयों में वह कहाँ तक अनुराग रखता है, परिश्रम से कार्य करता है, उसके व्यवहार और आदर्श का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ता है, वह राष्ट्रीय विचारों का है या नहीं ? वह ऐसा तो नहीं है कि सब काम नीचे के कर्मचारियों और अहलकारों के भरोसे छोड़ दे, जिससे बोर्ड को स्थानीय स्वराज्य की जगह स्थानीय नौकरशाही कहा जा सके। उसने पहले नगर या देश की सेवा कैसी और कितनी की है, और कितने कष्ट उठाये हैं ?"

बोर्ड का झण्डा तो नीचा न करेंगे?—"इस समय बोर्ड पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा है, इसे बोर्ड ने अपना लिया है, इसे ज़ारी रखने या न रखने को मैं नगर के मानापमान का प्रश्न मानता हूँ। उच्च अधिकारियों का रुख़ देखकर, आप इस झण्डे की रक्षा करने से अपना हाथ तो न खींच लेंगे? अथवा, सबका कोप-भाजन बन कर भी नगर और राष्ट्र की मान-मर्यादा की रक्षा करेंगे?"

स्वदेशी को प्रोत्साहन—"आप अपने को जनता का सेवक कहते हैं; क्या आप ग़रीब भाइयों के कष्ट-निवारण करने के लिए कुछ उपाय काम में लायेंगे? वर्तमान बोर्ड के समय जो प्राइमरी स्कूल में दस्तकारी की शिक्षा की व्यवस्था आरम्भ हुई है, क्या आप इसको आगे बढ़ायेंगे? इस समय यहाँ आने वाले माल में से खद्दर पर चुंगी माफ़ है, क्या आप अन्य स्वदेशी सामान पर चुंगी कम करने के विषय में कुछ गहरा विचार करेंगे? क्या आप स्कूलों के लड़कों में, मास्टरों में तथा अन्य अहलकारों में स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग बढ़ाने की विविध योजनाओं को कार्य में परिणत करके अपने स्वदेश-प्रेम का, और उन वस्तुओं को बनाने वालों के प्रति वास्तविक सहानुभूति का, परिचय देंगे?"

राष्ट्रीय भावों की वृद्धि—मैं प्रत्येक उम्मेदवार से यह भी कहूँगा, "आप राष्ट्रीय भावों से चौंकते तो नहीं हैं? इंगलैंड, जर्मनी आदि समस्त स्वतन्त्र देशों में विद्यार्थियों को राष्ट्रीय

गान सिखाया जाता है। इंगलैंड के स्कूलों में बच्चे निर्भय होकर गाते हैं:—

वृटेनिया (इंगलैंड) शासन कर, वृटेनिया समुद्र पर शासन करता है। वृटन (अंगरेज़) कभी गुलाम न होंगे ?*

"क्या हमारे बच्चे, हमारे भावी नागरिक, प्राइमरी और मिडिल-स्कूलों के लड़के, निर्भयता-पूर्वक वन्देमातरम् गान गा सकेंगे ? क्या आप इस बात का समर्थन करेंगे कि विद्यार्थी लुक-छिप कर नहीं, खुले आम यह कहा करें कि—

क्यों कर भला हो मुमकिन, तकलीफ़ न उठावें,
बच्चे सपूत जो हों, बीमार मां की ख़ातिर।
सौ बार गर जनम हो तो भी यही धरम हो,
मर जायँगे मरेंगे, हिंदोस्तां की ख़ातिर॥

या, यह कि—

नसों में रक्त भारत का, उदर में अन्न भारत का।
करों में कर्म भारत का, हृदय में मान भारत का॥"

एक बात और—मैं प्रत्येक उम्मेदवार से उपर्युक्त तथा इस इस प्रकार के अन्य प्रश्न करूंगा और केवल प्रश्नों का उत्तर लेकर ही न रह जाऊंगा। मैं जानता हूँ कि कुछ उम्मेदवार मेम्बरी की धुन में इस समय सच्ची-झूठी सब तरह की प्रतिज्ञाएं कर देंगे; वे जैसे

---

*Rule Britannia, Britannia rules the waves.
Britons never shall be slaves.

भी बने, मेरे श्रद्धा-भाजन बनने का प्रयत्न करेंगे। पर मैं अपनी समझ का उपयोग करके देखूंगा कि उन लोगों की बात में कितना सार है।

निदान, सब बातों को विचारे बिना मैं किसी उम्मेदवार को अपना मत न दूंगा। मेरा मत ऐसा होना चाहिए जो किसी भी मूल्य से ख़रीदा न जा सके। नागरिक विषयों में भाई-चारे का, मित्रता या दोस्ती का, या सम्प्रदाय आदि का विचार रखना नितान्त अनुचित है। ये बातें व्यक्तिगत विषयों के लिए हैं। मुझे अपना मत नगर के हित की दृष्टि से ही देना चाहिए, इस सिद्धान्त को समझ कर मुझे अपना कर्तव्य पालन करना है। परमात्मा इसके लिए मुझे यथेष्ट बल दे, निर्भयता और साहस दे, जिससे मैं नागरिकता की कसौटी पर खरा उतरूँ।

भारतीय ग्रन्थमाला

१—भारतीय शासन (आठवां संस्करण)	...	१।)
२—भारतीय विद्यार्थी विनोद (तीसरा संस्करण)	...	॥=)
३—हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ (तीसरा संस्करण)	...	।।।)
४—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य	...	।।।)
५—भारतीय सहकारिता आन्दोलन	...	२)
६—भारतीय जागृति (तीसरा संस्करण)	...	१।)
७—विश्व वेदना	...	।।।=)
८—भारतीय चिन्तन ...	...	।।।=)
९—भारतीय राजस्व Indian Finance	...	।।।=)
१०—निर्वाचन पद्धति (तीसरा संस्करण)	...	॥-)
११—नागरिक कहानियां ...	...	॥=)
१२—राजनीति शब्दावली (दूसरा संस्करण)	...	।।।)
१३—नागरिक शिक्षा (दूसरा संस्करण) ...	...	॥=)
१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन ...	...	।।।=)
१५—श्रद्धाञ्जली	...	।।।=)
१६—भारतीय नागरिक Indian Citizens	...	॥)
१७—भव्य विभूतियां	...	॥=)
१८—अर्थशास्त्र शब्दावली Economic Terms	...	।।।)
१९—कौटिल्य के आर्थिक विचार ...	...	।।।=)
२०—अपराध चिकित्सा ...	...	१॥)
२१—पूर्व की राष्ट्रीय जागृति ...	...	१॥)
२२—भारतीय अर्थशास्त्र (दूसरा संस्करण)	...	२॥)
२३—गाँव की बात	...	।)

भारतीय राज्य शासन ।।।), नागरिक ज्ञान १); राजस्व १), धन की उत्पत्ति १।), नागरिक शास्त्र १।।।), ऐलिमेंटरी सीविक्स ।।।), सरल नागरिक ज्ञान ॥-), सरल अर्थशास्त्र ३), सरल भारतीय शासन ॥)

भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दावन ।